RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 05 प्रकाशन तिथि : 25 अप्रेल कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मई 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

बुंदेल केसरी महाराज छत्रसाल

महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप एवं
बुंदेल केसरी महाराज छत्रसाल जी
की जयंती पर कोटि-कोटि नमन

बुंदेल केसरी
महाराज छत्रसाल

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy,
Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda,
Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

संघशक्ति

4 मई, 2022

वर्ष : 58 अंक : 05

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	06
पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	09
छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	स्वामी श्री जगदात्मानन्द	11
यदुवंशी करौली का इतिहास	राव शिवराजपाल सिंह इनायती	15
हम अपनेपन को भूल गए कुछ सम्भव.....	श्री विक्रमसिंह ढींगसरी	17
मौत और जीवन के बीच ईश्वरीय जीवन	श्री युधिष्ठिरसिंह बैठवास	19
पतिभक्ता गान्धारी	संकलित	23
छत्रसाल बुन्देला	श्री भागीरथसिंह लूणोल	26
अनूठी शत्रुता	श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	29
संघ-साधना	श्रीमती रतन सेतरावा	31
वर्तमान में क्ष.यु. संघ ही एकमात्र सही रास्ता	श्री नन्दसिंह बेड़	32
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

संघप्रमुख श्री का प्रवास :

सभी संभागों की यात्रा और वहाँ के स्वयंसेवकों से मिलन कार्यक्रम की कड़ी में संघप्रमुखश्री 6 मार्च को गुजरात के गोहिलवाड़ संभाग की यात्रा पर रहे और मोरचंद तथा कालिया बीड़ में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 7 मार्च की यात्रा सौराष्ट्र कच्छ संभाग की रही जिसमें हरभमजीराज गरासिया राजपूत-छात्रावास राजकोट, हड़मतिया गाँव, गांधीग्राम स्थित श्री राजपूत सभा भवन, रतनपुर तथा कोटड़ानायाणी गाँव में कार्यक्रम रहे। 8 मार्च को श्री क्षत्रिय युवक संघ का गुजरात स्थित कार्यालय शक्तिधाम ही कार्यक्रम स्थल रहा, जो सुरेन्द्रनगर में स्थित है। 9 मार्च को उत्तर गुजरात संभाग के मोढेराव सिद्धपुर में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 10 मार्च को मध्य गुजरात क्षेत्र में काणेटी तथा साणंद के निकट तेलाव में कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

11 मार्च को संघप्रमुख ने महाराष्ट्र में प्रवेश किया और वापी में कार्यक्रम रहा। 12 मार्च को मुम्बई में भायंदर पूर्व की नारायण शाखा में, दिन में 11.30 बजे मलाड में वीर दुर्गादास शाखा में कार्यक्रम रहे और शाम 7 बजे भूलेश्वर के काशी विश्वनाथ मंदिर में स्नेह मिलन कार्यक्रम का आयोजन रहा।

13 मार्च को संघप्रमुखश्री का प्रवास सूरत का रहा। सूरत में पहले श्री क्षत्रिय गुजरात राजपूत सभा भवन में कार्यक्रम रहा और बाद में मेवाड़ क्षत्रिय संस्थान सूरत के होली मिलन समारोह में भाग लिया। रात को 8 बजे श्री खेतसिंह चांदेसरा के निवास स्थान पर स्थानीय स्वयंसेवकों का स्नेह मिलन रखा गया। 14 मार्च को राजपूत वाड़ी सूरत में सामुहिक शाखा का आयोजन सम्पन्न हुआ और फिर बालिकाओं की पद्मिनी शाखा में संघ चर्चा का कार्यक्रम रखा गया।

17 मार्च को पूर्वी राजस्थान संभाग का कार्यक्रम पीपली (अलवर) में संघप्रमुखश्री की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। 19 मार्च को संघप्रमुखश्री मेवाड़ मालवा संभाग की यात्रा पर रहे। पहले भीलवाड़ा स्थित महाराणा कुम्भा छात्रावास में स्नेह मिलन का कार्यक्रम रखा गया। कार्यक्रम के बाद प्रेस वार्ता का आयोजन भी रहा। सायं 5 बजे चित्तौड़गढ़ पहुँचकर जौहर भवन में आयोजित स्नेह मिलन कार्यक्रम को सम्बोधित किया। 20 मार्च को मेवाड़ वागड़ संभाग की यात्रा रही जिसमें पहले बेणेश्वर में स्नेह मिलन का आयोजन रहा, बाद में सायं सात बजे उदयपुर पहुँचकर कुम्भा सभागार में स्वयंसेवकों का स्नेह मिलन कार्यक्रम रखा गया। 5 अप्रेल को जयपुर संभाग का कार्यक्रम संघशक्ति प्रांगण में सम्पन्न हुआ।

क्षात्रपुरुषार्थ के कार्यक्रम :

श्री क्षत्रिय युवक संघ द्वारा निर्देशित सकारात्मकता का प्रसार करते हेतु क्षात्र पुरुषार्थ के कार्यकर्ता गाँव-गाँव पहुँचे। बाड़मेर जिले के महाबार, मीठड़ा व बायतु में ऐसे कार्यक्रम हुए। झुंझुनू जिले के चिराना में, नागौर जिले के रोहीणा में तथा चूरू जिले के पायली व बीदासर में कार्यक्रम हुए। इन कार्यक्रमों को उसी क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने सम्पन्न किया।

अपनी कार्य विस्तार योजना के अन्तर्गत क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के कार्यकर्ताओं ने कई जगह कार्यक्रम आयोजित किए। 12 मार्च को पाली स्थित वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास में कार्यक्रम रहा। 13 मार्च को श्री गंगानगर जिले के रायसिंहनगर स्थित ब्लैक पैंथर होटल में कार्यक्रम रहा। उसी दिन चतरपुरा (जयपुर), बू कर्मसोतां (नागौर), होटल अतिथि सिरोही, भारीजा (सीकर), स्वरूपविलास होटल अलवर में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। 16 मार्च को बीकानेर के मुस्लिम समाज के साथ परस्पर चर्चा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। 17 मार्च को कार्यविस्तार योजना के अन्तर्गत बरसिंगपुरा (सीकर) में, 19 मार्च को तिड़ोकी (सीकर) में

(शेष पृष्ठ 16 पर)

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 18.10.2007 को सुबह उद्‌बोधित संदेश}

संघ में लगातार कदम बढाते रहें तो मन में ऐसा एक संकल्प सा जागृत होता है, जीवन भर काम करते रहने का। प्रारम्भ में ऐसी कोई कल्पना नहीं थी, पर विचारों का भावों में परिवर्तित होना चलता रहता है तो कभी यकायक ही ऐसा निर्णय जाग उठता है। उस समय एक रोमांच सा होता है और हम हतप्रभ हो जाते हैं। हम संघ में किसी कारणवश आए। संघ में आना हमें अच्छा लगा और चलते रहे, पर ऐसा क्षण आएगा जिसमें ऐसा संकल्प जगेगा, यह कल्पना नहीं थी, अत: स्तब्ध हो जाना स्वाभाविक है। जब ऐसा निश्चय उभरता है तब हम में से कुछ लोग बहुत प्रसन्न होते हैं तो कुछ चिन्ताग्रस्त होकर भयभीत भी हो जाते हैं। लेकिन लगभग सभी इस निर्णय को स्वीकार करते हैं। गद्‌गद्‌ हो जाते हैं, भाव आता है कि मैं तो निहाल हो गया।

अब जीवन भर यही काम करना है, इस निश्चय के बाद संसार बदला-सा नजर आता है। यह स्थिति हममें से कुछ की कुछ दिन, कइयों की कुछ माह, कईयों की कुछ वर्ष तक रहती है पर वैसी की वैसी सदैव नहीं रहती। हमारे निश्चय की हमको याद कौन दिलाए? अभी हमने एक सहगीत गाया था-'साथी न संगी दिखता है कोई, एक अकेला समर में', अपने निर्णय को हमें ही निभाना है। निर्णय अच्छा तो बहुत लगता है पर समय के साथ उसकी गंभीरता नहीं रह पाती। इसीलिए कुछ दूर हो जाते हैं वे लोग कहा करते हैं-करना तो चाहते हैं पर कर नहीं पाते। कौन रोक रहा है? क्यों नहीं कर सकते? वास्तव में तो हमने संकल्प का अर्थ ही नहीं समझा, या उस निर्णय को गंभीरता से नहीं लिया। इसीलिए हमारे जीवन में वह उत्साह, वह उमंग दिखाई नहीं देती।

कौन उत्साह की याद दिलाये? अपने सांसारिक धन्धे करते हुए क्या कभी वह घड़ी याद आती है, जब यह संकल्प जगा था। सोचा तो यह था कि कुछ भी संघ की सेवा में छुपाकर नहीं रखूंगा, पर कुछ प्रकट भी करते हैं क्या? कुछ भी प्रकट करने में पूरी कंजूसी बरतते हैं हम। कितनी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कल्पना की थी। उसी कल्पना से हमें हमारे जीवन की तुलना करनी चाहिए। तुलना कभी नेष्ठ से नहीं करनी है। हम सोचें कि औरों से तो ठीक ही हूँ, जो संघ में हैं ही नहीं। यह सोच भी अच्छी नहीं है। संघ के श्रेष्ठ लोगों से तुलना करें, गैर संघ के श्रेष्ठ लोगों से भी तुलना ऐसा निर्णय लेकर बढने वालों के लिए उचित नहीं।

संघ के शिक्षण में क्या कोई कमी है? संघ का शिक्षण प्रभाव तो उसी पर करेगा जो इस शिक्षण से गुजरेगा, इसे जीवन में उतारेगा। बरसात हो रही है, भिगोयेगी उसी को जो बरसात से अपने आपको छिपाता नहीं। जो कमरे में बैठ जाए उसको भिगोयेगी कैसे? परमेश्वर की कृपा, संघ के शिक्षण रूप में सब पर बरस रही है। पर जिसने अपने आपको छिपाया है वहीं दोष पैदा हो जाता है। विशेष शिविरों में जिनकी बारी आती है, वे इसका महत्त्व नहीं समझते और अपने आपको छिपाते हैं तो ऐसी स्थिति देखकर रहम आता है। ऐसा लगता है कि संघ आपको कष्टों में डाल रहा है। आपको दुखी देखकर संघ भी दुखी होता है, व्यथित होता है कि क्यों इनको कष्ट दिया जाए। पर जो निर्णय हमने लिया है जीवन भर संघ कार्य करने का, वह मार्ग तो है ही कष्टों भरा। यह जानकर हमारा पुरुषार्थ क्यों नहीं जाग्रत होता।

हमारे परिवारों की स्त्रियों का व्यवहार हमें चुनौती देता है। उसके जीवन साथी का चुनाव स्वयं उसका नहीं था, उसके पिता या उसके भाई ने किया पर वह उसे जीवन भर निभाती है। पूर्ण सेवा करती है, प्रसन्न रहती है। उनका व्यवहार हमसे पूछ रहा है कि कैसा है तुम्हारा

(शेष पृष्ठ 18 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

सन् 1944 में अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में हो रहा था जिसमें भाग लेने जोधपुर से पूज्य श्री तनसिंहजी कुछ साथियों के साथ दिल्ली आये थे और धौंकलसिंह जी चरला भी उस अधिवेशन में गये थे। ये लोग एक ही स्थान पर ठहरे थे। श्री धौंकलसिंह जी चरला ने पूज्य श्री तनसिंहजी के बारे में बताया कि ''मैं उनसे और वे मुझसे सर्वथा अपरिचित थे। अधिवेशन की चर्चा में मैंने (धौंकलसिंह चरला) निम्न तुकबन्दी सुनाई –

दिल्ली अधिवेशन देखा है।
जाति सम्मेलन देखा है।।
अध्यक्ष महोदय मंत्री को आपस में लड़ते देखा है।
दोनों को ही भौंपू (माइक) के लिपट लटकते देखा है।।

यह सुनते ही श्री तनसिंहजी खिलखिलाकर जोर से हँस पड़े और बहुत देर तक हँसते रहे और इतने हँसे कि भविष्य में मैंने उन्हें ऐसा हँसते फिर कभी नहीं देखा। इस प्रकार यह हमारा प्रथम परिचय था और इसके पश्चात् तो निकटता बढती ही गई। शिविरों में एवं पत्र–व्यवहार से विचारों का आदान–प्रदान होता रहा। प्रश्नोत्तर चलते रहे एवं शंकाओं का समाधान होता रहा।''

सन् 1941 में चौपासनी स्कूल जोधपुर में पढते समय पूज्यश्री तनसिंहजी ने एक संघ की स्थापना की जिसका नाम था–''छात्र सुधारक संघ''। 16 नवम्बर, 1944 को पिलानी के शिविर में इस नाम को बदल कर ''श्री क्षत्रिय युवक संघ'' का नामकरण किया गया। संघ के सम्बन्ध में श्री धौंकलसिंहजी चरला के मन में कुछ शंकाएँ उठी। इन शंकाओं के समाधान हेतु श्री धौंकलसिंह जी चरला ने पूज्य श्री तनसिंहजी से कुछ प्रश्न किए जिनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है –

प्रश्न– देश में आज अनेक पार्टियाँ, दल व संघ विद्यमान हैं, फिर हमें अलग संघ बनाने की क्या आवश्यकता है।

उत्तर– जहाँ तक कांग्रेस का प्रश्न है, उसकी भावना जाति विरोधी है और क्षत्रिय जाति से उसे द्वेष है और धर्म तो उसके द्वारा इस तरह से पीटा गया है कि उसके कराहने की आवाज भी नहीं सुनाई देती। हमारे इतिहास को हमारे बच्चे ही परियों की कहानियों की तरह बड़े चाव से पढेंगे। भारत के इतिहास को परियों की कहानी बना देना क्या राष्ट्र का अपमान नहीं है?

जहाँ तक साम्यवाद का प्रश्न है, यह ताश के पत्तों का महल है, जो एक दिन हवा के झौंके मात्र से ढह जाएगा।

अन्य पार्टियों के विषय में पूज्य तनसिंहजी ने ये पंक्तियाँ गुनगुनाई –

''स्वयं ही पार तक जाओ, भँवर में नाव को लेकर।
किसी को क्या? बचावे जो तुम्हें, मझधार में पड़कर।।''

जहाँ तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सवाल है, उससे प्रेरणा लेकर ही यह कार्य प्रारम्भ कर रहे हैं।

प्रश्न– जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विद्यमान है तो फिर श्री क्षत्रिय युवक संघ की क्या आवश्यकता है?

उत्तर– नये सिरे से अग्नि प्रज्वलित करने के लिए बड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है। लकड़ी, कंडे, घास–फूस और माचिस आदि। जबकि पहले से बुझी आग में दबी चिन्गारी को केवल फूँक मारने की ही देरी है।

प्रश्न– संघ का क्या लक्ष्य है? क्या उद्देश्य है? मार्ग क्या है एवं साधन के विषय में क्या सोचता है?

उत्तर– लक्ष्य है– जाति एवं राष्ट्र का गौरव। **उद्देश्य है–** क्षात्र धर्म। **मार्ग है–** संवेदनशीलता। **साधन है–** संघ। इसे स्पष्ट करते हुए आगे बताया–

लक्ष्य है– जाति एवं राष्ट्र का गौरव–

जिस वस्तु, पशु या मानव में समान गुणों की प्रधानता होती है या समानता होती है, वह जाति का रूप धारण करती है। एक जैसा उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाले भी एक जाति के अनुयायी समझे जाते हैं जैसे मजदूर, किसान, मिलिट्री मैन, कॉलिजियेट्स (कॉलेज के छात्र) आदि।

समाज जातियों से बनता है, छोटा भी हो सकता है, बड़ा भी हो सकता है। समाज में एक विधान रहता है, चाहे ईश्वर प्रदत्त या मानवकृत। राष्ट्र व्यक्तियों, जातियों एवं समाजों का समूह है। समान संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, भाषा, वेशभूषा तथा प्राकृतिक मेल ही राष्ट्र का निर्माण करता है।

राजपूत जाति भी है और क्षात्र धर्म का पालन करने से क्षत्रिय भी। चारों वर्णों को मिलाकर हिन्दू समाज का निर्माण किया गया है। नैतिक उत्थान के लिये तथा शिक्षा देने हेतु ब्राह्मण वर्ण बना, समाज-रक्षा एवं बाहरी शत्रुओं से बचाने हेतु तथा छतरी के समान सब अंगों की रक्षा करने व उन्हें विकसित करने के लिये क्षत्रिय वर्ग बना। वैसे ही समाज के पालन-पोषण एवं आदान-प्रदान के लिए वैश्य तथा सेवा कार्य हेतु शूद्र वर्ग बने। दूसरी संस्कृतियों के कुत्सित वातावरण ने इस व्यवस्था को तोड़ा और ईश्वर प्रदत्त कर्तव्यों को छोड़ा। ऊपर के दिखावे के साथ हमने ठोस भारतीयता को भुला दिया। स्नान न भी करो परन्तु क्रीम लगाकर बाल अवश्य संवारो, यह पश्चिमी सभ्यता ने सिखलाया है। ईश्वरीय देन से विमुख होकर जो बुद्धिवाद के फेर में पड़ता है, सफलता उससे उतनी ही दूर जाती है।

वेदों ने क्षत्रिय को बाहु माना है, उपनिषदों ने उसे प्राण माना है। भारवी एवं कालीदास ने नाश से बचाने वाले को क्षत्रिय माना है और कृष्ण कहते हैं कि युद्ध से बढकर क्षत्रिय के लिये कोई धर्म नहीं है। समाज रक्षा क्षत्रियों का जन्मसिद्ध अधिकार और कर्तव्य दोनों है। आज इतने वर्षों बाद भी राजपूतों में समाज रक्षा की भावना है। क्षत्रिय कर्म प्रधान उतना नहीं है जितना जन्म प्रधान। 15 रुपये महावारी पाने वाला राजपूत एक बनिये के लिये मर मिटता है, ऐसे अन्य कितने मिलेंगे।

आज हमारा इतिहास बहुत ही बिगड़े हुए रूप में हमारे सामने आ रहा है। आज प्रताप को भी स्वार्थी होने का कलंक लगाया जाता है। क्या अन्य राजपूतों की तरह वह ऐशो-आराम नहीं कर सकता था, क्यों फिर घास खाई?

महाराज मनु ने राजनीति और धर्म को मिलाकर समाज को व्यवस्थित रूप से रखने वाली राजनीति चलाई परन्तु जब से धर्म इसमें से निकाल दिया तब से अव्यवस्था फैली। शंकर राव देव (कांग्रेस सेक्रेटरी) ने कहा कि मुझे व्यक्ति को उसके चरित्र बल या नैतिक बल से नहीं नापना है, मुझे तो देश भक्त चाहिये।

आज की राजनीति में धर्म की जगह भूख है जिसने नैतिक पतन किया है। कांग्रेस पूंजीपतियों के टुकड़ों पर पलकर आंदोलन कर रही है। राजनीति, राज करने की नीति थी परन्तु आज अर्थ कमाने की नीति बन रही है। जयचंद और मीरजाफर को गद्दार कहने वाले खुद भारत माता के शरीर के दो टुकड़े करके मियां जिन्ना को सौंप रहे हैं। इसलिए हमारा लक्ष्य है जाति एवं राष्ट्र को पुनः गौरवान्वित करना।

उद्देश्य है–क्षात्र धर्म :

सन् 1916 से 1946 तक गाँधी जी ने जो अहिंसा चलाई थी, वह खत्म हो गई। चैम्बरलीन का शक्ति युग 1914 से 1939 में समाप्त हो गया। भारत की युद्ध की भूख ज्यों कि त्यों बनी है। युद्ध न होने से कायरता पनपती है और नैतिक पतन होता है। युद्ध और शान्ति दोनों अनिवार्य

है। आज सब लोग सिद्धान्तों को फेंककर अपनी शक्ति संचय में लगे हुए हैं। कांग्रेस, हिन्दू-सभा, लीग, अकाली, जाट सभा, राजपूत सभा, राष्ट्रीय सभा, राष्ट्रीय संघ एवं अजगर संघ आदि। कांग्रेस ऐसी घाटी से गुजर रही है कि अगर वह क्षात्र धर्म के महत्त्व को नहीं समझेगी तो नष्ट हो जायेगी। क्षात्रधर्म युद्ध और शान्ति दोनों समय में रहता है। लोग शान्ति के समय में युद्ध को अनावश्यक समझते हैं परन्तु वह अपना कार्य करता रहता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कहता है कि हम हिन्दू मात्र की रक्षा करते हैं, जबकि क्षात्र धर्म कहता है-हम समस्त समाज एवं राष्ट्र की रक्षा करते हैं। राजपूत की क्या रक्षा, वह तो स्वयं ही रक्षक है। राजपूत की रक्षा इसलिये आवश्यक है कि वह समाज की रक्षा करे।

समाज केवल हिन्दू ही नहीं, बौद्ध नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, अपितु हमारा समाज वह है जो अमृत होकर जीता है, विष होकर नहीं। विष वह है जो समाज कंटक है, विद्रोही वह है जो समाज को नष्ट करना चाहता है। क्षात्र धर्म केवल हिन्दू या हिन्दू-राष्ट्र की रक्षा ही नहीं करता बल्कि वह समस्त समाज का रक्षक है, जिसमें सभी भारतीय आते हैं फिर वे चाहे हिन्दू हों, मुसलमान, बौद्ध या ईसाई ही क्यों न हों? परन्तु समाज व राष्ट्र के द्रोहियों के लिए क्षात्र धर्म में कोई क्षमादान नहीं, वह चाहे भाई ही क्यों न हो। यही हमारा उद्देश्य है।

मार्ग- संवेदनशीलता है :

क्षत्रिय समाज, असंवेदनशील हो गया है। जाति, समाज तथा राष्ट्र की पीड़ा का उसे भान नहीं हो रहा है, उसे संवेदनशील बनना है। संघ का यही एकमात्र मार्ग है कि राजूपत जाति में एक कसक, एक तड़फ, एक पीड़ा उत्पन्न कर दे कि जिससे वह समाज की दयनीय दशा को सहन न कर सके और उसे मिटाने के लिये त्याग, बलिदान हेतु तत्पर हो उठे। अकर्मण्यता, फूट, आलस्य से जूझना है। निस्वार्थ भाव से समाज सेवा, न कि राज्य, जमीन, पद या वैभव के लिये। यही हमारा मार्ग है।

साधन-श्री क्षत्रिय युवक संघ :

1. संघ समाज का हृदय है जो शरीर के सब अंगों में रक्त संचार करेगा।
2. नैतिक बल
3. क्रियात्मक संगठन
4. निर्माण (चरित्र आदि)
5. संस्कार

श्री धौंकलसिंह जी चरला की संघ के सम्बन्ध में जो भी शंकाएँ थी, जो भी प्रश्न थे, पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने उत्तर में उनकी शंकाओं का, उनके प्रश्नों का समाधान किया। पूज्य श्री तनसिंहजी व श्री धौंकलसिंहजी चरला के बीच का यह संवाद भारत स्वतंत्रता से पहले का था।

पूज्य श्री तनसिंहजी की यह मान्यता ही नहीं अपितु अटल विश्वास था कि क्षत्रिय जाति का भविष्य उज्ज्वल है भगवान क्षत्रिय जाति को नष्ट नहीं करना चाहता क्योंकि अगर ऐसा होता तो वह बार-बार इस जाति में जन्म क्यों लेता?

पूज्य श्री तनसिंहजी के अटल विश्वास को देखा और संघ की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर धौंकलसिंहजी चरला ने कहा-''अब मेरा भी निश्चय दृढ़ हुआ है कि संघ के द्वारा ही जातीय उत्थान सम्भव है और यही एकमात्र साधन है जिसके द्वारा हम अपने लक्ष्यों तक पहुँच सकते हैं। 50 वर्ष के इस समय की प्रगति को मैंने देखा है और आंकलन किया है, जिससे मेरी आत्मा को अति प्रसन्नता मिली है। विचार क्रान्ति की यह लहर राजस्थान की सीमा लांघकर पड़ोसी प्रान्तों तक पहुँच चुकी है। समाज जो संघ के प्रति उदासीनता से देखता था, अब उत्सुकता से दृष्टिगत करने लगा है। संघ निर्मित व्यक्तित्व अब प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होने लगे हैं। संघ की विचारधारा शादी-विवाह एवं ओसर-मोसर के अवसरों पर भी सुनाई पड़ने लगी है। संघ के बढते हुए कदम देखकर हृदय आह्लादित हो उठता है।''

(क्रमशः)

संघशक्ति/4 मई/2022

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

इतिहास की धुंध पर एक प्रकाश :
पृथ्वीराज चौहान का जन्मकाल, भाग–3

पुष्टीकरण :

जन्म वर्ष पर विचाराधीन सिद्धान्त के सत्यापन पर पिछले भाग से आगे जारी....

विग्रहराज के बाद चौहान राज्य का पहला शिलालेख पृथ्वीभट का ही मिलता है, हांसी से (दिसम्बर 1167 ई.)[1] इसमें पृथ्वीभट को महाराज कहा है। हांसी एक सीमा प्रान्तीय दुर्ग था। हांसी का यह शिलालेख पृथ्वीभट के मामा किल्हण गुहिलोत ने लगवाया। इन्हें पृथ्वीभट ने वहाँ क्षेत्रपाल/गवर्नर नियुक्त किया था। स्वयं शिलालेख के कथनानुसार कारण था हांसी दुर्ग की क्षतिपूर्ति और प्रान्त की उत्तर पश्चिमी सीमा पर दृष्टि रखना, क्योंकि वहाँ से गजनवियों के आक्रमण की सम्भावना बनी रहती थी। कोई भी राजा अपनी आंतरिक भूमि व राज्य का केन्द्र सुरक्षित करने से पूर्व सीमा प्रान्त के प्रबंधन की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाता। यानी पृथ्वीभट ने पहले पर्याप्त भूमि पर अधिकार कर अपनी स्थिति को दृढ़ किया होगा। उसके बाद ही हांसी (मूल रूप से तोमर क्षेत्र) जैसे सीमांत विषयों पर ध्यान दिया होगा, जिसके परिणाम में किल्हण की नियुक्ति और शिलालेख का अंकन आदि होते हैं।

हांसी नियुक्ति और शिलालेख लगवाने के बीच किल्हण ने पंचपुर नामक एक क्षेत्र के राजा को परास्त भी किया जिसका उल्लेख शिलालेख स्वयं कर देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हांसी पृथ्वीभट को शिलालेख बनने से कम से कम 4–6 माह पूर्व यानी 1167 ई. के मध्य में मिली।

पुनरावलोकन करें तो विग्रहराज की मृत्यु से शुरू हुए घटनाक्रम में पृथ्वीभट का सक्रिय होना, प्रतिद्वंदियों से टकराना, जो कुछ जीता वो जीतना और हांसी के शिलालेख तक पहुँचने में बहुत समय निकला है।

पृथ्वीभट के मारे गए प्रतिद्वंदियों में से एक अमरगांगेय का कोई शिलालेख नहीं मिलना, उसका शासनकाल बहुत छोटा होने से समझ आता है।

एक बार सार में विग्रहराज की मृत्यु से मई 1168ई. तक दोहरा लेते हैं–

- पृथ्वीभट का लौटना और मदनपाल तोमर से भिड़ना।
- कुछ समय बाद मदनपाल तोमर की मृत्यु।
- दोनों चौहान राजाओं (अमरगांगेय, पृथ्वीभट) का शासन, कुछ समानांतर, कुछ क्रम से।
- सामंतों की उहापोह, निर्णायक संघर्ष में एक दावेदार की पराजय व मृत्यु।
- राज्य में शान्ति और व्यवस्था लौटना और विजेता पृथ्वीभट के भीतरी व प्रांतीय क्षेत्रों में अलग–अलग संदर्भ में शिलालेख आना।

ये सब घटित होने में नि:संकोच तीन वर्ष लग सकते हैं। सो अब मई 1168 ई. से पीछे की ओर चलें तो हमें विग्रहराज की मृत्यु 1165 ई. पूर्वार्ध के बाद होती नहीं दिखती। यह हमारे पहले के मोटे अनुमान (1166 का आरम्भ या उससे पूर्व) को और सटीक कर देता है। इस प्रकार हरिराज चौहान का जन्म 1164–65 ई. में आया और अंतत: पृथ्वीराज का जन्म 1162–63 ई. में होता है। जैसा कि हमने पहले निर्धारित किया था, पृथ्वीभट का यह जन्म समय विग्रहराज की मृत्यु के कम से कम दो वर्ष पीछे ही है।

1166 ईस्वी क्यों सही नहीं :

पृथ्वीभट दोनों भाईयों में बड़े थे। श्री दशरथ शर्मा द्वारा प्रस्तावित जन्मकाल (1166 ईस्वी) मानें तो सोमेश्वर–कर्पूरी युगल अपने विवाह के बाद 5 वर्षों तक नि:संतान रहे। तब की सामाजिक और राजनैतिक परिपाटी को देखते हुए यह बात नहीं पचती कि एक मध्ययुगीन हिन्दू राजपरिवार के युगल को इतने समय संतान नहीं हुई। समाधान हेतु ना तो सोमेश्वर का कोई अन्य विवाह होता है, न ही कहीं ऐसी देरी का कोई उल्लेख मिलता है।

पृथवीराज का जन्म यदि मई 1166 ई. में रख दिया जाये तो उसके बाद जितनी घटनाएँ हुई, जिन्हें हम पीछे देख चुके हैं, उनके लिए कोई समय ही नहीं बचता (दो वर्ष से भी कम)।

पृथ्वीराज का पहला सैन्य अनुभव समकालीन ग्रंथ अनुसार 1177 ई. में है[2]। ऐसा अनुभव 1162-63 ई. में जन्मे 14-15 वर्षीय किशोर के लिए तो व्यावहारिक है पर 1166 ई. में जन्मे 11 वर्षीय बालक के लिये नहीं। आगे उस युद्ध की घटनाओं के वर्णन से पाठक इस तर्क की पृष्ठभूमि भलीभाँति जान जाएँगे।

समकालीन जैन विद्वान्जिनपति सूरि जी द्वारा पृथ्वीराज को 'केलिप्रिय' कहे जाने पर आदरणीय हरिहर निवास द्विवेदी चाहते हैं कि हम 1182 ईस्वी के पृथ्वीराज को 15-16 साल का एक लड़का मान लें[3]। पर समकालीन पृथ्वीराज विजय का ही कथन क्रम देखें, तो पृथ्वीराज के राजतिलक (1177 ईस्वी) और नागार्जुन से उत्तराधिकार युद्ध (1178 ईस्वी) के बीच जयानक द्वारा पृथ्वीराज के सैन्य गतिविधियों में भाग लेने, मुख पर दाढ़ी, मूंछ आना आरम्भ होने और समकालीन राजकन्याओं व विवाहिताओं के हृदय पृथ्वीराज प्रति प्रेमांकुर फूटने से विचलित हो जाने की बातें लिखी हैं[4]। क्या ये सब किसी 11 वर्षीय बालक के बारे में संभव है? आज की गारण्टी हम नहीं लेंगे, पर कम से कम मध्ययुग में तो ऐसा नहीं था।

1177 ई. में पृथ्वीराज का राज्याभिषेक होने के कुछ समय बाद ही छोटे भाई हरिराज (दूसरा नाम यशराज) की हाँसी में नियुक्ति की गयी[5]। यदि पृथ्वीराज का जन्म 1166 ई. में था और इस कारण हरिराज का 1167 ई. के अन्त में, तो एक 9-10 वर्षीय राजकुल बालक की एक महत्त्वपूर्ण सीमा प्रांतीय दुर्ग पर प्रशासक नियुक्ति कैसे सम्भव है?

निष्कर्ष :

तथ्यों व सिद्धान्तों को परख कर हुई इस विवेचना के निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

अ) ज्योतिषीय सूचना के आधार पर अनुमानित पृथ्वीराज चौहान का जन्म काल 1166 ई. गलत है।

ब) पृथ्वीराज का जन्म 1162-63 ई. में हुआ था।

अब जबकि हमें पृथ्वीराज का कुल आयु भोग (29-30 वर्ष) ज्ञात है। मैं चलते-चलते एक बार ज्योतिष पर पकड़ रखने वाले मित्रों का ध्यान फिर रासो के उस कथन की ओर ले जाऊँगा कि पृथ्वीराज की कुंडली के अष्टम भाव में शनि देव बैठे थे। आपको विडम्बना से तुरन्त साक्षात्कार हुआ होगा।

भारतीय इतिहास के स्रोतों में गद्य व पद्य दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इनके अपने गुण, ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी या कठिनाइयाँ हैं। कई बार छद्म या परोक्ष रूप से ऐतिह्य सूचना दी जाती है। या फिर वो अलंकार व रूपकों के बोझ में दबी होती है। जहाँ महिमामण्डन की चकाचौंध में तथ्य ओझल हो जाते हैं। और कुछ नहीं तो काल ही ग्रन्थ के पन्नों को खा जाता है।

ऐसे में इतिहासकारों का कार्य कितना कठिन हो जाता है यह तो स्पष्ट है। ऐसी समस्याएँ केवल रासो ही नहीं, पृथ्वीराज विजय में भी है। जयानक जी ने असहनीय रूप से लम्बे विषयान्तर लिए हैं, कभी पृथ्वीराज तो कभी किसी और को देवत्व देने में। अपने पांडित्य का प्रदर्शन करते-करते वो भूल गए कि भविष्य में उन्हें पढ़ने को विवश हुए बेचारे इतिहासकारों का क्या होगा। ये प्रवृत्ति थोड़ी कम पर मुस्लिम लेखकों में भी पाई जाती है। जैसे कि तजउलमासिर के लेखक इस्लाम और उसके गाजियों के कसीदे गढ़ते-गढ़ते कई बार विषय से भटक जाते हैं।

पर हमने पृथ्वीराज का जन्म समय निकालने भर के लिए इतना श्रम क्यों किया? क्योंकि जन्म के समय का आगे के युगांतकारी इतिहास पर, उससे जुड़ी धारणाओं, सिद्धान्तों आदि पर गहरा प्रभाव है। जन्म का समय गलत हो तो उलझनें पैदा कर घटनाओं व उनके पीछे की शक्तियों को समझने में हमारे लिये बाधक बन जाता।

(क्रमशः)

1. इंडियन एंटीक्वेरी, 1912, पृ. 17-19, 2. पृथ्वीराज विजय, सर्ग-10, श्लोक 9, 3. खरतरगच्छ पट्टावली, दिल्ली के तोमर-हरिहर निवास द्विवेदी, 4. पृथ्वीराज विजय, सर्ग-9, श्लोक 44, 55, 63-65 और सर्ग-10, श्लोक 1-4, 5. पुरातन प्रबंध संग्रह, पृ. 86।

संघशक्ति/4 मई/2022

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

- स्वामी जगदात्मानन्द

आर्थिक समस्याएँ :

कुछ लोग कहा करते हैं, 'धनाभाव न होता तो मैं अद्‌भुत कार्य कर दिखाता।' अमेरिका में एक पत्रकार हजारों लोगों के जीवन का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लगभग 70% चिन्ताएँ वित्तीय समस्याओं के कारण होती हैं। भारत जैसे गरीब देश में इस समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। आर्थिक संकट से ग्रस्त होने पर हम जीवन की समस्याओं को हल करने का साहस खो बैठते हैं। आत्मसंशय, उत्साह की कमी और थकावट हमारे मन को रौंद डालती है; ऊब, आलस्य तथा चिन्ता हमें सताती रहती है। सम्पत्ति की पूजा करने वाले किसी समाज में गरीबी एक बड़ा अभिशाप है।

तो क्या आर्थिक समस्याओं का कोई समाधान नहीं है? क्या हमें केवल निराश होकर हाथ-पर-हाथ रखे समस्या के बारे में सोचते रहना होगा?

यह सच है कि बात-की-बात में तुम्हारी आर्थिक समस्याओं को हल कर सकने वाला कोई जादुई सूत्र हमारे पास नहीं है। परन्तु यदि हम ईमानदारी के साथ विचार और कार्य करें, तो उन्हें हल कर पाना कठिन नहीं होगा। सम्भवत: यह समस्या तुम्हारे या तुम्हारे बड़े लोगों द्वारा संसाधनों के कुप्रबन्ध के कारण पैदा हुई हो। पर इसे हल करने का दायित्व तुम्हारा है। स्थिति से निपटने के लिए तुम्हें ईमानदारीपूर्वक प्रयास करना होगा।

मैं तुम्हें अपने एक मित्र के बारे में बताता हूँ। तीन सदस्यों वाले अपने छोटे परिवार के भरण-पोषण के लिए वह पर्याप्त धन कमाता है। वह एक सरकारी कर्मचारी है। उसे घर चलाने में ज्यादा खर्च नहीं करना पड़ता। तो भी वह हर महीने के आरम्भ में ही ऋणग्रस्त होने लगता है। फिर वह प्राप्त वेतन से पिछले महीने के कर्ज को चुका नहीं पाता। पुराना कर्ज चुकाने के लिए वह कोई नया कर्ज लेता है। इस प्रकार यह दुश्चक्र चलता रहता है। फिर झूठ बोलना जरूरी हो जाता है। मित्रों के द्वारा उधार देने से मना करने पर मित्रता पर असर पड़ता है। कभी-कभी तो उसके लिये घर की दैनिक जरूरतें भी पूरी कर पाना कठिन हो जाता है। घर में किसी के बीमार पड़ जाने या अतिथियों के आ जाने पर स्थित दु:खदायी हो जाती है। यद्यपि सारी गलती उसी की है, तो भी वह दूसरों को दोष और समाज को अभिशाप देते हुए कहता है, 'लोगों के उद्देश्य तथा कार्य पूरी तौर से स्वार्थपूर्ण हैं।'

ये सज्जन अच्छे और उदार है, पर थोड़े अपव्ययी हैं। वे उच्च जीवन-स्तर से जीना पसन्द करते हैं। वे मित्रता को महत्त्व देते हैं अत: वे अच्छे लोगों की संगति ढूंढते रहते हैं। परन्तु बचत में उनका विश्वास नहीं है। वे कर्ज लेकर भी टेलीफोन, रेफ्रिजीरेटर, वाशिंग मशीन आदि खरीद लेते हैं। ये सज्जन अपेक्षाकृत आसानी से आरामदेह जीवन बिता सकते थे। उनकी गलती केवल इतनी सी है कि वे बिना विचारे अपना धन ऐसी चीजों पर खर्च कर देते हैं, जो उनकी हैसियत के परे हैं। इस कारण उन्हें कर्ज का आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रकार कर्ज और निर्धनता का दुश्चक्र उन्हें पीड़ित किए रहता है।

अर्थ-व्यवस्था एक कठोर शासक है। यह किसी के प्रति दया अथवा सहानुभूति नहीं दिखाती। तुम चाहे जितना भी प्रयास करो, पर धन खर्च किए बिना रह नहीं सकते। परन्तु यदि तुम थोड़ा विचारपूर्वक और भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर चलो, तो तुम अपना धन इतनी तेजी से नहीं खर्च करोगे। तात्पर्य यह है कि भविष्य की जरूरतों पर थोड़ा ध्यान देना हमें अपव्यय करने से रोकता है।

वास्तविक समस्या धन के अभाव की नहीं है। महान अर्थशास्त्रियों की खोज है कि धन का ठीक-ठीक उपयोग करना ही बड़ा महत्त्व रखता है। दूसरे शब्दों में, हमें धन खर्च करने की कला सीख लेनी चाहिए। अनेक धनी लोग अपनी आय की अपेक्षा काफी अधिक खर्च कर

डालते हैं और इसके फलस्वरूप अपने लिए आर्थिक संकट पैदा कर लेते हैं। और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपनी सीमित आय को भी विवेकपूर्वक व्यय करके सुखी, संतुष्ट तथा ऋणमुक्त रहते हैं।

इंग्लैण्ड में रहते समय गाँधीजी हर महीने 45 पौंड खर्च किया करते थे। बाद में उन्होंने अपना खर्च केवल 15 पौंड तक सीमित कर लिया था।

बैंगलोर में निवास के दौरान गाँधीजी ने महादेव भाई से कहा था, 'देखो, कपड़े धुलवाने में काफी व्यय हो रहा है।' महादेव भाई ने कहा, 'मैं नित्य 4 बजे उठकर मध्य रात्रि तक कार्य करता रहता हूँ।' गाँधीजी ने कहा, 'तो फिर प्रात: साढ़े तीन बजे उठकर अपने कपड़े धो लिया करो।'

जब गाँधीजी यरवदा जेल में थे, तब उन्हें सरकार से प्रतिमाह दो सौ रुपये का भत्ता मिला करता था। वे प्रतिमाह केवल 35 रुपये खर्च करके बाकी राशि सरकार को लौटा देते थे। गाँधीजी ने तपोमय जीवन बिताया था। माना कि हम सबके लिये उस हद तक किफायती होना सम्भव नहीं है, लेकिन हम लोग भी कुछ हद तक तो अपना खर्च जरूर घटा सकते हैं। गाँधीजी ने अपने जीवन द्वारा हमारे सामने एक दृष्टान्त रखा था। थोड़ा-बहुत ही सही, पर क्या हमें भी उस आदर्श को अपनाने का प्रयास नहीं करना चाहिए?

एक बार एक अंग्रेज ने कहा था, 'धन कमाना तो हर कोई जानता है, परन्तु लाखों में से कोई एक ही उसका सही व्यय करना जानता है।' यह एक परस्पर-विरोधी कथन लगता है, पर इसमें एक गहन सत्य छिपा है। यदि हम ईमानदारी से अपने दैनिक खर्च पर विचार करें, तो पता चलेगा कि हम कितना अनावश्यक खर्च कर डालते हैं।

हमारे एक मित्र कहा करते थे, 'मुझे यह तो दिखता है कि रुपये कैसे सिक्कों से परिणत हो जाते हैं, पर ये सिक्के कहाँ और कैसे गायब हो जाते हैं, इसका मुझे पता नहीं चलता।' बहुत समझा-बुझाकर, मैंने उनसे कम-से-कम महीने भर उनके दैनिक व्यय का लेखा-जोखा रखने को राजी किया। शीघ्र ही वे समझ गए कि बिना विचारे किए जाने वाले छोटे-मोटे खर्चों से ही उनके पैसे खत्म हो जाते थे। सामान्यत: हम जिन खर्चों को महत्त्वहीन या नगण्य मानकर उपेक्षा करते हैं, वस्तुत वे ही अज्ञात रूप से हमारे बजट को असंतुलित कर देते हैं।

नित्य डायरी लिखना बड़ा लाभकारी है। इससे हमें अपनी वित्तीय समस्याओं का कारण ढूँढ़ने में मदद मिलती है। अपनी आय के आधार पर सामान्य बजट बनाकर हम उसी के आधार पर खर्च करने की आदत डाल सकते हैं।

सर्वप्रथम तो जीवन की मूलभूत जरूरतों पर ध्यान देना होगा। रेडियो या टेलीविजन खरीदने की अपेक्षा स्नानागार की टूटी दीवाल की मरम्मत कराना अधिक जरूरी है। विलासिता को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती और न ही अपनी भावनात्मक जरूरतों की पूर्ति के लिए चीजें खरीदनी चाहिए। खर्च के पूर्व अपने से यह पूछने में अधिक बुद्धिमानी है कि क्या यह चीज सचमुच जरूरी है? परिवारों को अपनी आय के भीतर ही गुजारा करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। आपात स्थिति में निपटने के लिये हम बैंक में रखी अपनी बचत की मदद ले सकते हैं। बीमारी, दुर्घटना जैसी अप्रत्याशित या अपरिहार्य घटनाओं के लिए भी हमारे पास सुरक्षा-व्यवस्था या बीमा हो। लॉटरी, जुआ आदि धन अर्जन के सरल उपाय लग सकते हैं, पर अन्तत: वे हमें बर्बाद कर डालते हैं।

एक विख्यात बैंकर और अर्थशास्त्री एक बार युवा विद्यार्थियों की एक टोली को आर्थिक सफलता के रहस्य बता रहे थे-

1. कभी अपनी कमाई से अधिक खर्च मत करो।
2. यदि तुम्हारे ऊपर ऋण है, तो पहले उसे चुकाओ।
3. कर्ज से दूर रहो। उधार में कुछ मत खरीदो। कुछ विक्रेता प्रलोभन देते हुए कहते हैं, 'अपनी इच्छानुसार जो चीज चाहिए, ले जाइए, पैसे बाद में दे दीजिएगा।' ऐसे लोगों की चाल में मत फँसो।
4. नितान्त आवश्यक चीजों के लिये ही धन का व्यय करके अपना खर्च घटाओ। कुछ भी खरीदने के पूर्व

यह विचार कर लो कि क्या उसके बिना तुम्हारा काम चल सकता है या क्या तुम उससे सस्ती चीज से अपना काम चला सकते हो।

5. जितना भी हो सके, बचत करो; और उसे बुद्धिमता के साथ तथा ठीक ढंग से निवेश की कला सीखो।

तुम कह सकते हो कि ये बातें तो सबको ज्ञात है, फिर इन्हें बताने की क्या जरूरत है? परन्तु केवल जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि तुम अपने जीवन में इनका कितना अभ्यास करने में समर्थ हो और तुमने इसे कार्य रूप में परिणत करने का कितना प्रयास किया है। अच्छे अर्थ-प्रबन्ध इन पाँच मूलभूत सिद्धान्तों के अभ्यास का प्रयास करो। एक वर्ष तक इन पाँच सिद्धान्तों पर चलने का प्रयास करने पर तुम्हें मेरी बातों की सत्यता समझ में आ जाएगी। इससे तुम्हारी अर्थ-व्यवस्था निश्चय ही सुधरेगी।

बेकन कहते हैं, 'धन एक अच्छा सेवक, पर बुरा मालिक है। धन के सेवक न बनकर, उसी को अपना सेवक बनाओ।'

सफलता का रहस्य :

अपने सहकर्मियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय भारतीय जीवन बीमा निगम के एक वरिष्ठ अधिकारी से एक बार मैंने उनकी सफलता का रहस्य पूछा। मैं जानना चाहता था कि क्या चिन्ता और निराशा उन्हें तंग नहीं करती? उन्होंने बताया कि एक बार हताशा के शिकार होकर भी किस प्रकार वे उसके भीषण चंगुल से सही-सलामत निकलने में समर्थ हुए थे –

'यद्यपि शुरू में एक अधिकारी के रूप में अपनी नियुक्ति से मैं प्रसन्न था, परन्तु धीरे-धीरे एक तरह के भय व चिन्ता ने मुझ पर आधिपत्य जमा लिया। विभिन्न संगठनों में लगभग 17 साल एक कर्मचारी के रूप में कार्य करके मैंने अनुभव प्राप्त किया था। मैं कर्मचारियों के दोषों, कटुताओं, अनुशासहीनता, अक्खड़पन आदि से परिचित था। मुझे आशंका थी कि क्या मैं उन्हें कार्य में प्रेरित करके उचित रूप से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकूँगा? अधीनस्थों को अनुशासित रख पाने में विफलता से पैदा होने वाले सम्भावित मानसिक तनाव से भी मैं भयभीत था। मुझे लगता था कि कभी-न-कभी मेरी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ रस्साकशी अपरिहार्य हो जाएगी। प्रश्न था कि ऐसी परिस्थिति से कैसे निपटा जाएगा। मैं जानता था कि केवल बड़बोलेपन, तर्क-सामर्थ्य और वाद-विवाद की शक्ति से कोई मदद नहीं मिल सकती। प्रतिद्वन्द्वी को तर्क में परास्त कर देने से कोई लाभ नहीं। तर्क में हार जाने वाले लोग बदले की भावना रखकर विजेता को एक-न-एक दिन धराशायी कर सकते हैं। मनुष्य को विजय के बाद भी उल्लास का प्रदर्शन न करने की तथा पराभूत हो जाने पर भी पराजय-भाव अभिव्यक्त न होने देने की कला सीख लेने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के दुर्भाव को जीतने के लिये एक सकारात्मक चिन्तन-शक्ति भी विकसित करने की आवश्यकता है। मनोवैज्ञानिक युद्ध में समर्थ, बुद्धिमान, शिक्षित और सुसंगठित कर्मचारी-समूह से प्रभावशाली ढंग से निपट पाना आसान कार्य नहीं था। मैं पहले से ही यह जानता था कि यहाँ चालबाजी से काम नहीं चलने वाला है। किसी भी चालाकी का आश्रय लेने पर, वे लोग उसे तत्काल समझ लेते हैं और उसे निष्प्रभावी बनाने के प्रयास में लग जाते हैं। लोगों के हृदय-परिवर्तन के अतिरिक्त समस्या के समाधान का कोई अन्य प्रभावशाली उपाय नहीं था। परन्तु इस कार्य का सम्पादन उतना आसान नहीं था। खैर, अपने जीवन में अब तक प्राप्त अनुभवों से मुझमें जो आत्मविश्वास विकसित हुआ था, उसने भी मुझे दृढ़ साहस प्रदान किया। भगवान की कृपा से मैं अपने कार्य में सफल रहा।

'मेरी सफलता का सर्वाधिक श्रेय मेरे धैर्य को जाता है। किसी कार्यालय में आने वाली समस्याओं को हल करने में धैर्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अनेक समस्याएँ तनाव और विक्षोभ की अभिव्यक्ति होती हैं। संचित भावनाओं की अभिव्यक्ति के यथेष्ट अवसर मिलें, तो वे निकल जाती हैं। किसी उत्तेजित व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त शब्दों, वाक्यों एवं अभिव्यक्तियों को अक्षरशः नहीं लेना

चाहिए। निराशा या उत्तेजना की अभिव्यक्ति के प्रत्युत्तर में क्रोधपूर्ण प्रतिक्रिया दिखाने पर समस्या बढ़ती है तथा अधिकाधिक जटिल होती जाती है। ऐसे अवसरों पर धैर्य बनाए रखना आवश्यक है। मैंने कहीं पढ़ा था, ''अनेक रोगियों को उनकी बीमारी से निजात पाने के लिये चिकित्सक की नहीं, अपितु एक श्रोता की आवश्यकता होती है।'' अपने मन का बोझ हलका करके और हृदय के दुःख-कष्ट दूसरों के साथ बाँटकर हम राहत महसूस करते हैं। मानसिक कष्टों के बारे में तो यह विशेष रूप से सत्य है। अनेक कर्मचारियों वाले किसी कार्यालय में मुख्य समस्या मानवीय सम्बन्धों की है। किसी कर्मचारी द्वारा उग्र या क्रोधपूर्ण आचरण करने पर एक समस्या खड़ी हो जाती है। तर्क-वितर्क की सहायता से समस्या का कारण ढूँढ़ना बेकार है। हिंसा-भाव को निष्प्रभावी बना देने भर की ही आवश्यकता है। कर्मचारी की भावाभिव्यक्ति को धैर्य और सहानुभूतिपूर्वक सुनना ही सर्वोत्तम तरीका है। अपनी भावनाओं को प्रकट करने के बाद ही उसका क्रोध घट जाता है। समस्याओं के निदान का आश्वासन ही प्राय: समस्याओंको हल कर देता है। अगले दिन शायद उसको अपनी समस्या की याद ही न आए। इस प्रकार धैर्य के द्वारा अनेक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है। धैर्यपूर्व बात सुनने में पीड़ित व्यक्ति का अहंकार शान्त हो जाता है और उसका स्वाभिमान बढ़ जाता है और निश्चित रूप से उसकी प्रतिक्रिया की तीव्रता घट जाती है। समस्या का समाधान न भी हो, पर प्रतिक्रिया आगे नहीं बढ़ती। फिर धैर्य से एक और लाभ यह है कि विरोधी के मन में विजय का भाव आ जाता है। विरोधी को जब लगता है कि उसके विचारों को बिलकुल ही अस्वीकार नहीं किया गया है तथा उसे टाला नहीं गया है, तो इससे उसके अहं भाव को काफी संतुष्टि मिलती है और उसकी उत्तेजना बहुत कम हो जाती है।

'परन्तु धैर्य की भी एक सीमा होनी चाहिए। अन्यथा वह स्वयं भी एक दुर्बलता बनकर नई समस्याएँ पैदा करेगा। धैर्य उस व्यक्ति की असहायता के रूप में व्यक्त नहीं होना चाहिए, जो कितने भी भड़कावे के प्रत्युत्तर में मौन रह जाता है। धैर्य को अनुचित मौन निष्क्रियता में परिणत होने से बचाने के लिए व्यक्ति को जान-बूझकर किए गए दुर्व्यवहार, बुरी आदतों और मिथ्या दोषारोपण का विरोध करना चाहिए। यदि कोई कर्मचारी जान-बूझकर या लापरवाही से अनुशासनहीनता दिखाता है, तो उसे चेतावनी अवश्य दी जानी चाहिए। धैर्य तब सार्थक होता है, जब कोई व्यक्ति परिस्थिति की जरूरतों के अनुसार कड़ी कार्यवायी करने की ताकत दर्शाता है। सकारात्मक गुण होने के लिए धैर्य को बल का द्योतक होना चाहिए। यह केवल तभी प्रभावशाली हो सकेगा। परन्तु ऐसे कठोर उपायों को अन्तिम विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

'धैर्य के समान ही ईमानदारी भी एक आवश्यक गुण है। ईमानदारी एक महान शक्ति है। ईमानदारी का अर्थ है, मन, वाणी तथा कर्म- व्यक्तित्व के तीनों पक्षों का समायोजन। उदाहरणार्थ यदि आप कर्मचारियों को कोई वचन देते हैं, तो ईमानदारी का तकाजा है कि आप तदनुसार कार्य करें या कम-से-कम वायदे के अनुसार कार्य करने की चेष्टा करें। अन्यथा वह बेईमानी या धोखेबाजी है। धोखेबाजी का शिकार हुआ व्यक्ति अपने अपमान या सदमे को आसानी से नहीं भूलता। किसी-न-किसी रूप में एक-न-एक दिन उसका विस्फोट हो ही जाता है। विस्फोट न होने पर वह अन्दर-ही-अन्दर उबलता रहता है। ईमानदारी से लोगों का दिल जीता जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञापूर्ति या वचन-रक्षा में समर्थ नहीं हो पाता, तो भी प्रयत्न में ईमानदार बने रहने का भी एक महत्त्व है। इससे उसे आदर मिलता है और दूसरों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

'सफलता प्राप्त करने के लिए हमें हाथ में लिए कुए कार्य का पूरा ज्ञान होना चाहिए। ''ज्ञान ही शक्ति है''- यह कथन पूर्ण और अविकृत ज्ञान की जरूरत पर बल देता है। इसके अलावा हमें सामान्य ज्ञान अथवा अन्य

(शेष पृष्ठ 28 पर)

संघशक्ति/4 मई/2022

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

महाराजा हरबक्शपाल लगातार हो रहे पिंडारियों और मराठों के हमलों से तंग आ चुके थे, इसी बीच उन्हें खबर लगी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी और रघुनाथ राव पेशवा के बीच पुणे में संधि हो गई है। इस सबसे सीख लेकर महाराजा ने नवम्बर 9, 1817 को ईस्ट इण्डिया के साथ संधि कर ली, यह राजपुताने के रजवाड़ों में करौली के साथ पहली संधि थी। इस संधि पत्र पर करौली के महाराजा यदुकुल चंद्रभाल हरबक्श पाल देव बहादुर की ओर से मीर अताकुली और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स के प्रतिनिधि चार्ल्स थिओ पी मेटकॉफ ने हस्ताक्षर किए (कनिंघम, भाग 3, संख्या 10), तथा गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स के हस्ताक्षरों के बाद यह संधि लागू हो गई।

इस संधि की खास बात यह थी कि शर्तों के अनुसार करौली राज को ब्रिटिश सरकार के आधीन राज्य नहीं होकर मित्र और संरक्षित राज्य की हैसियत से माना गया, संधि की शर्तें निम्न प्रकार से थी :-

1. दोस्ती, एकता और एक दूसरे की खैर ख्वाही प्रथम पक्ष अंग्रेजी सरकार और दूसरे पक्ष करौली के राजा और उनके वंशजों के साथ हमेशा प्रभावी और जारी रहेगी।
2. अंग्रेजी सरकार करौली राज्य पर बाहरी हस्तक्षेप/हमलों के समय सुरक्षा की जिम्मेदारी लेती है।
3. राजा करौली अंग्रेज सरकार की सलाह बिना किसी अन्य राज्य या पक्ष से कोई संधि या सुलह नहीं करेंगे। अगर किसी राज्य के साथ विवाद होता है तो अंग्रेज सरकार उसको निबटाएगी। राजा अपने राज्य के खुद मुख्तार हैं और अंग्रेज सरकार उनके अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।
4. अंग्रेज सरकार अपनी मर्जी से वह पच्चीस हजार का खिराज माफ करती है जो करौली के राजा मासलपुर के परगना के बदले पेशवा को देते थे (यह क्षेत्र और इसकी खिराज वसूली पेशवा ने पुणे संधि के तहत अंग्रेज सरकार को हस्तांतरित कर दिया था।)
5. करौली के राजा अंग्रेज सरकार की वक्त जरूरत अपनी हैसियत अनुसार सैन्य सहायता देंगे, लेकिन उसका खर्च अंग्रेज सरकार उठाएगी।
6. यह अहदनामा जिसमें कुल छः शर्तें दर्ज हैं दिल्ली मुकाम पर तैयार किया गया जिस पर चार्ल्स थियो पी मेटकॉफ और मीर अताकुली के मुहर और दस्तखत हुए। इसकी तस्दीक की हुई नकल दस्तखती हिज एक्सीलेंसी द मोस्ट नोबल गवर्नर जनरल और महाराजा करौली को आज की तारीख 9 नवम्बर, सन् 1817 ईस्वी से दिल्ली मुकाम में एक महीने के अन्दर दी जावेगी।

(इस अहदनामा को हिज एक्सीलेंसी गवर्नर जनरल ने कैंप सलिया में 15 नवम्बर 1817 ईस्वी को तसदीक किया। दस्तखत जे. एडम, सेक्रेटरी, गवर्नर जनरल।)

इस संधि के साथ अंग्रेज सरकार ने मासलपुर परगना करौली राजा को सद्भावना के तौर पर लौटा दिया, महाराजा के प्रतिनिधि मीर अताकुली और दीवान लालजी राम ने माँग की कि चम्बल पार का इलाका जो ग्वालियर ने दबा लिया है वह भी वापस दिलाया जाए, लेकिन यह माँग मंजूर नहीं हुई क्योंकि अंग्रेज पहले ही पेशवा के साथ संधि कर चुके थे और उस दिन तक उनके काबिज क्षेत्र को उनका मान चुके थे। इसके बाद एक समय ऐसा भी आया जब भरतपुर विवाद में अंग्रेजों ने बलदेव सिंह का पक्ष लिया और करौली से भी उसके पक्ष में सहायता करने को कहा, लेकिन कुछ सलाहकारों की मानकर चम्बल पार का इलाका नहीं मिल पाने की खुंदक में राजा ने उल्टा दुर्जनसाल की सहायता की। जब यह लग रहा था कि संधि

खटाई में पड़ सकती है तब अंग्रेजों ने नामालूम कारणों से इस कार्यवाही को अनदेखा कर दिया। ईस्वी सन् 1832 में यह महाराजा गवर्नर जनरल से मिलने धौलपुर भी गए, जहाँ इन्हें पूर्ण सम्मान दिया गया। महाराजा हरबख्श पाल का अंग्रेजों की संधि के बाद का समय बहुत शान्तिपूर्वक निकला और भवन निर्माण की दृष्टि से महाराजा गोपालसिंह के बाद सबसे अधिक स्वर्णिम और क्रियाशील रहा। महलों में इन्होंने पत्थरों में अत्यन्त कलापूर्ण हरभान की बान बनवाई जिसका पत्थर पर खुदाई का कार्य अत्यन्त ही मनमोहक है। इसके अलावा हरसुख विलास (शिकार महल) बनवाया जो आज का सर्किट हाउस है। कर्नल कीटिंग जब करौली आए तब हरसुखविलास को देखकर हतप्रभ रह गए, उनका कहना था कि पूरे भारत में जहाँ तक वो गए हैं, इससे अधिक कलात्मक भव्य भवन नहीं देखा। शिकार गंज में दो मंजिला तहखाने सहित एक बहुत ही भव्य भवन बनवाया जिसमें भूल भुलैया जैसी सुरंगें भी हैं। मंडरायल में नगर कोट, कुंए, कचहरी, चौकी, ऊपर किले में बाला किला भी बनवाया, जहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति तक 200 सैनिक रहा करते थे। ऊंटगिर किले में भी मंदिर और बालाकिला और किले का जीर्णोद्धार करवाया। मेलागेट के बाहर पूरा बाजार, राजौर में कैलादेवी के यात्रियों की सुविधा के लिए एक बहुत ही कलात्मक कुंआ और मंदिर बनवाया। नदी गेट बाहर लाल पत्थरों से बहुत ही भव्य सुखविलास बनवाया। इनके समय में ही धाबाई खूबीराम ने खूबनगर में एक ताल और छोटी-सी गढ़ी बनवाई। इसकी शिकायत होने पर खुबीराम ने रातों रात उसमें मूर्ति स्थापित कर उसे मंदिर का स्वरूप दे दिया। महाराजा हरबख्श पाल का शासन भवन निर्माण के मामले में स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। इनकी ईस्वी सन् 1839 में ला औलाद मृत्यु हो गई, मृत्यु से पहले महाराजा ने किसी को भी गोद लेने की घोषणा नहीं की थी, इससे उनके बाद कुछ बरसों तक बहुत बखेड़ा हुआ। महाराजा के सबसे नजदीकी जवाहर पाल के प्रपौत्र और हाड़ौती के राव अमीर पाल के बेटे प्रताप पाल वारिस थे, सबसे बड़ी महारानी कछवाही जी ने भी प्रताप पाल को दिवंगत महाराजा के अन्तिम क्रियाकर्म के लिए निर्देशित किया, सबसे नजदीकी परिवार से होने से किसी को कोई आश्चर्य भी नहीं हुआ। मगर क्रियाकर्म संपन्न होने के बाद जब राजतिलक का अवसर आया तब कछवाही रानी ने यह कहकर सबको चौंका दिया कि छोटी रानी सिसोदनी जी गर्भ से हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

कार्यक्रम रखे गये। 20 मार्च को श्री राजपूत क्षत्रिय संस्था सूरतगढ़ में, उसी दिन चूरू जिले के राजगढ़ में, राव रतनाजी राजपूत सभा भवन पावटा (जयपुर) तथा बणीर राजपूत छात्रावास-चूरू में कार्यक्रम आयोजित हुए। इनके अलावा जयपुर जिले की दूदू तहसील के ग्राम हटूपरा, खेतड़ी (झुन्झुनू) की कुमावत धर्मशाला और महाराव राजा भावसिंहजी की गद्दी बूंदी में भी कार्यक्रम आयोजित हुए। सभी कार्यक्रमों में श्री क्षत्रिय युवक संघ, प्रताप फाउण्डेशन तथा क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के उद्देश्यों व कार्य प्रणाली की जानकारी दी गई।

अन्य कार्यक्रम :

तनेराज शाखा सूरत, हनुवन्त राजपूत शाखा जोधपुर, ढींगसरी (चूरू), दुगोली (नागौर), गुड़ा केसरसिंह (पाली) तथा सिरसूं (नागौर) में होली स्नेह मिलन के कार्यक्रम आयोजित हुए।

23 मार्च को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सम्पर्क प्रमुखश्री रामलालजी संघप्रमुखश्री से शिष्टाचार भेंट करने संघशक्ति भवन पहुँचे।

25 मार्च को बस्तर के महाराजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव का बलिदान दिवस वर्चुअल माध्यम से मनाया गया।

27 मार्च को संघशक्ति प्रांगण में अधिकारियों का स्नेह मिलन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

हम अपनेपन को भूल गए कुछ सम्भव हो तो याद करें

– विक्रमसिंह ढींगसरी

रीति रिवाज :

आज संपूर्ण भारतीय समाज के लोग अपने पुराने रीति-रिवाज एवं संस्कृति को छोड़ रहे हैं। क्षत्रिय समाज भी उससे अछूता नहीं है। हमारे परिवार में अनेक छोटे-बड़े पर्व दीपावली, दशहरा, नवरात्रा, रक्षाबंधन, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, गणगौर, होली, अक्षय तृतीया, नवर्ष आदि अनेक पर्व आते हैं। ये परिवार में आपस में प्रेम बढाने वाले एवं संयुक्त परिवार में हमारी संस्कृति एवं इतिहास का ज्ञान करवाते हैं। उन सभी पर्वो में हमारे इतिहास एवं संस्कृति की झलक मिलती है। हमें अपने से बड़ों के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए, छोटों के प्रति, परिवार के प्रति, हमारा आदर्श व्यवहार कैसा हो इस सब में ये हमारे पर्व हमारी मदद करते हैं। हमारा उज्ज्वल चरित्र सामने आता है हमें अनेक शिक्षाप्रद वं सद्चरित्र की बातों की जानकारी मिलती है। परन्तु आजकल के कुछ युवा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर पाश्चात्य त्योहार एवं पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण कर रहे हैं एवं संस्कृतिहीन कार्य करते हैं। जिससे पूरे समाज को नीचे देखना पड़ता है। इसका मुख्य कारण एकल परिवार, आजकल की शिक्षा प्रणाली एवं वास्तविक शिक्षा का अभाव है। इसके लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ सकारात्मक कार्य कर रहा है। अत: समाज के बालकों को इससे जुड़ने की आवश्यकता है।

संयुक्त परिवार प्रणाली :

आज हम सभी हमारे प्राचीन समाज के मुख्य स्तम्भ संयुक्त परिवार को छोड़कर हम दो, हमारे दो की प्रणाली पर अग्रसर हैं अत: दादोसा-दादीसा, काकोसा-काकीसा, बाबोसा-भाभुसा से बालकों का संपर्क कम हो पाता है। जब आपस में संपर्क नहीं होता है तो आपसी प्रेम एवं सम्मान का भाव भी नहीं रहता। आपस में प्रेम बढे इसके लिये लगातार संपर्क में रहने की आवश्यकता है। हर छोटे-बड़े कार्यक्रम में परिवार के लोग साथ रहें तब हर कदम पर अच्छे सुझाव एवं गलतियों को सुधारने का मार्ग प्रशस्त होता है। हमारे कर्तव्य कर्म का ज्ञान हमारे परिवार एवं अपने समाज से ही प्राप्त हो सकता है। वरना आजकल के इस दूषित वातावरण में हमारे बालक-बालिकाएँ भी बहक रहे हैं। अत: जब शुरू से संस्कार ही नहीं मिलेंगे तो बालकों की क्या गलती है, उनको जैसा माहौल व वातावरण मिलेगा उसी के अनुसार वे वैसे ही बनेंगे। इस वातावरण को सही दिशा में मोड़ने के लिये श्री क्षत्रिय युवक संघ शिविरों एवं शाखाओं के माध्यम से सद्चरित्र निर्माण का कार्य कर रहा है।

पछतावा :

हमारा अपना पारम्परिक पहनावा विशेष रूप से महिलाओं की पोशाक, सम्मान का प्रतीक है। जिसको देखकर अपनापन जाग्रत होता है। परन्तु हमारी युवा पीढ़ी इसको छोड़कर अपने आपको मॉडर्न दिखाने का प्रयास कर रही है अत: हमें अपने पहनावे को नहीं छोड़ना चाहिए। दूसरी जातियाँ हमारा पहनावा अपना रही हैं, हम छोड़ रहे हैं।

इतिहास :

हमें अपने इतिहास पर गर्व है। हमारे पूर्वजों ने हर क्षेत्र में आदर्श स्थापित किए हैं उन आदर्शों के पास जाना तो दूर उनके नजदीक तक पहुँचना भी बहुत मुश्किल है। हम जब उनकी कथाएँ पढते या सुनते हैं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसे अलौकिक एवं दिव्य महापुरुषों ने हमारे समाज में जन्म लिया जिनका सारा संसार पूजन करता है। मंदिर बनाता है। उन्होंने यह सब अपने त्याग, बलिदान एवं सर्वस्व न्योछावर करने के कारण प्राप्त किया तभी हर इतिहासकार ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यहाँ का

कोई एक ग्राम नहीं जहाँ झुंझार व भोमिया न हुआ हो लेकिन हम सब अपने इतिहास पर इतराते रहे। यदि हम स्वयं कुछ न करें तो हमारी आने वाली पीढियाँ प्राचीन इतिहास पर तो गौरव करेगी लेकिन हमारे बारे में क्या विचार करेगी, इस पर चिंतन करने की आवश्यकता है। हम सिर्फ पूर्वजों के इतिहास पर ही अपने आपको इतराते रहें हम स्वयं कुछ न करें तो हमारी आने वाली पीढियाँ हम पर क्या अनुभव करेगी इसके लिये वर्तमान पीढ़ी को भी अपने जीवन-चरित्र में इतिहास से प्रेरणा लेने की जरूरत है। हम अपनी आने वाली पीढियों को भी इतिहास की सही जानकारी नहीं बता पा रहे हैं। आजकल जो इतिहास स्कूलों में पढाया जा रहा है उसे तोड़-मरोड़ कर हमारे आदर्श इतिहास को कमतर करने का प्रयास किया जा रहा है। एक बार किसी विद्यालय में बच्चों से दो महापुरुषों का नाम बताने के लिए कहा तो वो भी नहीं बता पाए। सतयुग से लेकर कलयुग तक इतने महापुरुष हुए हैं कि गिनती ही नहीं कर पाएँ, परन्तु वर्तमान युग के दुर्गादास राठौड़, महाराणा प्रताप, कल्ला रायमलोत, बल्लुजी चांपावत, राणा सांगा, राव छत्रसाल, राव वीरमदेव जैसे प्रात: स्मरणीय महापुरुषों की जानकारी हमारे बालकों को होनी चाहिए। परन्तु हम अपने बालकों को नहीं बता पा रहे हैं इसका मुख्य कारण छोटे परिवार एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली है। परन्तु हम इतिहास पर गर्व अनुभव कर सकें उससे प्रेरणा ले सकें इसके लिए युवा पीढी को यह बताने की आवश्यकता है पद्मिनी कौन थी, हाड़ी रानी कौन थी व उनको बलिदान की क्या आवश्यकता थी, यह तो ज्ञात होना ही चाहिए। श्री क्षत्रिय युवक संघ इसके लिये लगातार प्रयास कर रहा है। हमें अपने बुजुर्गों के पास बैठकर इतिहास की जानकारी लेने की आवश्यकता है एवं हमारे इतिहास लेखक राव एवं राणीमुंगों से भी क्रमबद्ध इतिहास की जानकारी लेनी चाहिए।

सहयोग एवं सम्मान :

भगवान श्रीकृष्ण ने क्षत्रिय के जो सात स्वाभाविक कर्म बताए हैं उनमें ईश्वरीय भाव सिर्फ क्षत्रिय में ही पाया जाता है। हमारे पूर्वजों को इस भाव के कारण ही हर जगह पूजा जाता था परन्तु वर्तमान समय में हमारे में दूसरों का सम्मान एवं सहयोग करने की प्रवृत्ति का जितना विकास होना चाहिए वो नहीं हो रहा है। क्षत्रिय में सहयोग एवं सम्मान होना चाहिए एवं अहंकार व स्वार्थवृत्ति नहीं होनी चाहिए, तभी हम अपनेपन को पहचान पायेंगे।

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

व्यवहार? तुम्हारा पुरुषार्थ कहाँ गया? संतों ने कहा है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए स्त्री योनि भी निभानी होगी। हमारे मन में जो संकल्प आया वह विवाह से भी अधिक महत्त्वपूर्ण घटना है, फिर कैसे थोड़े दिन बाद भूल जाते हैं। परिवार में यदि पति-पत्नी की स्थिति बदल जाए और पुरुषों का ऐसा ही पुरुषार्थ रहे, तो उस परिवार की क्या स्थिति होगी, जरा सोच लें।

बहुत कम लोग आए इन विशेष शिविरों में, पर निराशा की आवश्यकता नहीं। व्यक्तिगत चिन्तन की बात है यह। हर स्वयंसेवक शाखा लगाने के योग्य बने। उसे शिक्षण प्रमुख का सा व्यवहार करना ही चाहिए। प्रात: 4 बजे सबको उठना है तो मुझे उनसे 15 मिनट पहले ही उठना चाहिए। स्वयं जगे रहें तभी औरों को जगा सकते हैं। हम जो लोगों में देखना चाहते हैं वह हमारे अन्दर आ जाना चाहिए। इस प्रक्रिया से बचना नहीं है। उपदेश तो देना है ही पर उस उपदेश के अनुरूप अपने आपको बदलना भी है। अन्यों की फिक्र करने से पूर्व अपने आपको देखने की आवश्यकता है। संघ का कार्य लोक शिक्षण का कार्य है जो एक-दो व्यक्ति का नहीं, हम सबका है। अत: प्रत्येक को शिक्षण प्रमुख की तरह व्यवहार करना चाहिए, अर्थात् शिक्षण प्रमुख जैसा जीवन बनाना है। जीवन में विनय हो पर संस्कारों का तेज भी हो। एक तरह चलें, शिष्ट भाषा बोलें, शुद्ध बोलें, शुद्ध पढ़ें, यह आवश्यक है। ●

मौत और जीवन के बीच ईश्वरीय जीवन

– युधिष्ठिर सिंह बैठवास

चाहे धूप हो, चाहे छांव। चाहे आंधी हो चाहे बरसात। चाहे गर्मी हो चाहे ठण्ड। हमारे लिए ये सब सुविधाजनक हैं। हम इनके हिसाब से ढल सकें। हमारे लिए ये परेशानी नहीं प्राण बनें। चाहे मानसिक यातना हो या शारीरिक कष्ट। चाहे थकान हो या अधूरी नींद। शारीरिक तकलीफें, मानसिक कष्ट सभी जीवन में अमृत बन बरसें। यह चारित्रिक मजबूती इंसान में कोई तोड़ नहीं रहने देती और ऐसा जीवन व्यवहार हर कोई निभा नहीं सकते। इसलिए ईश्वर (स्वयं की पहचान) तक की दूरी तय करना कठिन है। ऐसा करने वाले को आश्चर्य से देखा जाता है, ईश्वर तुल्य माना जाता है और वो है भी। जीवन के वास्तविक उद्देश्य तक इसी तरह पहुँचा जा सकता है।

मेरी पहचान संघ बने। मैं संघ में ही संघ में दिखूं। क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवक में जोश होना चाहिए और वो औरों में भी जोश जगा सके। आज तक क्या किया, क्या हुआ, सब भूलकर अब पूरे जीवन को ही बदलना है। अगर हम हमारे ज्ञान को उडेलने का प्रयास करते हैं तो हमने संघ को जिया ही नहीं है। हमारा पारिवारिक भाव असुप्त अवस्था में किसी कोने में पड़ा-पड़ा कराह रहा है और हम इतिहास रचने की बात करते हैं। जो तनसिंहजी की इस प्रणाली को जी नहीं सकता वो चाहे कितना ही ज्ञानी हो, कितना ही विद्वान हो उसकी स्थिति बिना टायरों के वाहन की सी है। जो पूरी तरह तैयार है पर टायरों के अभाव में उसी स्थान पर खड़ा है जहाँ से उसके बाद पैदा होने वाले बहुत सारे लोग मंजिल के बहुत नजदीक पहुँच गए हैं। अगर हम शिविर नहीं करते और शाखा में नहीं जाते तो सब बेकार है। जितना सक्रिय रूप से हम शाखा या शिविर यानी जितने ज्यादा शाखा में जाएँगे या जितने ज्यादा हम शिविर करेंगे तभी हम संघ के काम के हैं। यह बात है संघ के हिसाब से चलने की। अगर हम संघ के हिसाब से नहीं चलते तो हमारी सोच संघ के लिए चाहे कितनी ही अच्छी हो उससे कुछ भी संघ का हित नहीं हो रहा है और हम संघ के लिए बिल्कुल भी उपयोगी नहीं हैं। जब सांसारिक सुख, पैसा, भावनाएँ, काम न करें तो फिर कर्म (शिविर व शाखा) ही काम करते हैं। हमसे संघ यही अपेक्षा करता है या माँग करता है कि हम जबरदस्त सक्रियता के साथ शिविर करें।

जोश और जुनून हमें पागल कर दे। ऊर्जा हर दिन बढती ही जाए। जोश और जुनून बार-बार हिलोरें मार-मारकर कभी यह काम बन्द न करने की खुशी व मुस्कराहट प्रस्फुटित करते रहें। हम हर बार जोश से भर जायें। हम बार-बार जोश से भर जाएँ। जोश के साथ काम करें। हिम्मत रखें। अपने आपको इस तरीके से Build करें कि जोश के साथ काम करते रहें। सौ बातों की एक बात है 'मन की बात मत मानो अपनी बात मन को मनवावो।' एक कान से सुनना, एक कान से निकालना जरूरी होता है कब? जब इस स्थिति से गुजर रहे हों-'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।' जब आपको लगे ऐसी स्थिति बन रही है तब सावधान हो जाएँ नहीं तो आपके जीवन का अन्त यह होगा-'माया मिली न राम।'

हम किसके लिए जीते हैं किसके लिये मरते हैं इस पर निर्भर करता है कि हम मरते हैं या कभी नहीं मरते। इंसान के अमर होने का अर्थ है इंसान के काम का अमर होना, इंसान के जीवन का अमर होगा। इंसान को उसके काम और जीवन को देखते हुए ही पूजा जाता है।

मुझे चिंता की कोई जरूरत नहीं। जब-जब संकट आएगा तनसिंह जी स्वयं शेर बनके गरजेंगे। मुझे तो बस इतना ध्यान रखना है मैं जिऊँ तनसिंहजी के लिए और मरूँ तनसिंहजी के लिए। जय क्षात्र धर्म। जय संघशक्ति।

क्षत्रिय युवक संघ वही क्षत्रिय परम्परा है जो क्षात्रधर्म के आधार से चली आ रही है। ऐसा नहीं है कि क्षत्रिय युवक संघ राजपूतों के उत्थान के लिए बाद में बनी

हई संस्था है। कागजों के हिसाब से यह सही है पर ईश्वरीय विधान के अनुसार जो पहले बताया वही सही है। तनसिंहजी को देखा जाए या तनसिंहजी की तस्वीर को या तनसिंहजी के क्षत्रिय युवक संघ को यही बात समझ आयेगी कि उन्होंने उसी रजपूती को वहाँ से उठाकर यहाँ क्षत्रिय युवक संघ में और क्षत्रिय युवक संघ के रूप में प्रकट किया है।

कोई कहता है भगवान है? कोई कहता है भगवान नहीं है? पर जीवन में कई बार ऐसा समय आ जाता है कि इंसान को मानना ही पड़ता है कि भगवान है। यह कहना उन लोगों के लिए सही है जिन लोगों के जीवन में सब अच्छा चल रहा है। जब आप इस मुकाम तक पहुँच जाओ जहाँ आपको मानना ही पड़े कि भगवान है तब क्या करें? तब उसके अतिरिक्त किसी का चिन्तन न करें। इसका अर्थ है उसका चिंतन अवश्य करें।

हृदय की उथल-पुथल व मस्तिष्क में निर्मित कैसे भी विचार मेरा भला नहीं कर सकते। यह जानने से ईश्वर क्रिया में आ जाता है। फिर सब कुछ परिवर्तित अपने पास दिखाई देता है। चमत्कार होते हुए दिखते हैं। लोगों के व्यवहार में परिवर्तन दिखने लगता है। कुछ लोगों का व्यवहार सकारात्मक हो जाता है कुछ का व्यवहार नकारात्मक। लेकिन जो हमारे पक्ष में है वो ज्यादा होने लगता है और जो विपक्ष में दिखता है वो भी हमारे पक्ष में ही होता है। जब हम किसी को विशेष कह देते हैं तो एक दोष सुनने वाले में उत्पन्न हो जाता है। जिसे विशेष कहा वो जिन्हें सालों पहले विशेष कहा उनके बराबर खुद को समझ लेगा और उनके साथ अमर्यादित व्यवहार करेगा। जिन्हें विशेष कहा ही नहीं उन्हें खुद से नीचे ही समझता है। एक दोष महत्त्व पाने का भी है। जिन लोगों के बीच मैं बैठा हूँ वो मेरी तारीफ करें, मुझे स्वयं से श्रेष्ठ समझें, मैं सबसे आगे निकल जाऊँ यह दोष है। शरीर की आँखें सुविधा के लिए है साधना में ये बहुत तरीके से बाधक बन सकती हैं। यह दोष अनुभव से ही मिटते हैं। अनुभव के अभाव में दोषी को दोषी कहने पर दोषी दोष स्वीकार ही नहीं करेगा और दोष बताने वाले को दोषी बता देगा।

जैसे जब जप किया जाता है तब यह कहा जाता है कि मन को छुट्टी मत दो नहीं तो यह किसी न किसी दिन जप को छोड़ देगा यानी माया में चला जाएगा और उसे जीने लगेगा। ठीक ऐसे ही अगर क्षत्रिय युवक संघ का काम करना है तो हमारा चिंतन भी यही बनना चाहिए और अगर हम चाहते हैं कि हमारा अहित कभी न हो तो हमें यह सावधानी बरतनी होगी कि हमारा शिविर व शाखा का अभ्यास कभी न छूटे।

हम चाहे कैसी भी सोच रखने वाले हों या कैसे ही स्वभाव के हों अगर हमारा काम सेना रूप में कार्य करने का है तो हमें सेना के हिसाब से तैयार होना होगा। लेकिन इसके लिए हमें हमारे संत व शान्त स्वभाव को छोड़ने की जरूरत नहीं है और न ही हम छोड़ पाएँगे। यह कृष्ण रूपी साधना है, जहाँ सन्त का अभ्यास है तो संरक्षक का अभ्यास है। जहाँ सेवक का अभ्यास है तो रक्षक का अभ्यास है। जहाँ सैनिक का अभ्यास है तो संदेशवाहक का अभ्यास है।

जो व्यक्ति अनुशासित होता है वही ईश्वरीय कार्य कर सकता है। ईश्वरीय जीवन जी सकता है। लेकिन अनुशासन का मतलब समझना होगा। अनुशासन का मतलब नियमों को जीवन भर निभाना। अब ये जो नियम हैं इनको आपका चयन माना जाएगा। अब जितना श्रेष्ठ आपका चयन होगा उतने श्रेष्ठ आप और आपका जीवन होगा।

न बुद्धि तर्क करे न मन कल्पना करे। यह बात संघ के भीतर भी हो और संघ के बाहर भी। काम करते-करते बुद्धि तर्क करने लगे, मुझे इससे क्या मिल रहा है? आँखें इस तर्क में सहयोग करेगी। महत्त्वाकांक्षा वह वजह बनेगी जिससे मन कल्पना करने लगेगा। और इस महत्त्वाकांक्षा का पूरा न होना हमें संघ से दूर ले जाएगा। यह संघ में काम करते हुए बुद्धि का तर्क है। दूसरी स्थिति यह हो सकती है आँखें संघ में देखते-देखते बाहर भी झाँकती है। झांकना तो ठीक है पर बाहर देखने लगे। पहले देखा फिर मन कल्पना करने लगा। कल्पना करते हुए जो चित्र नजर आए उन चित्रों को हकीकत में बदलने

के लिये बुद्धि ने तर्क कर दिया, अगर इन सपनों को पूरा करना है तो यह काम करना बन्द कर दो। जितने बुद्धि और मन नियन्त्रित रहेंगे उतना ही विशाल हमारा जीवन होगा। यह तप है जिसमें तपने से इंसान की स्मृति लौट आती है कि मैं ही परमात्मा हूँ।

एक दोष यह भी है जहाँ लोग देखते हैं या गिनती करते हैं वही काम करूँगा मैं। यह दोष बताता है हम महत्त्व पाना चाहते हैं। जहाँ महत्त्व की चाह है वहाँ मैं जीवित है। शारीरिक अनुरक्ति ही मैं है जो सच नहीं है। गिनती का दोष, गिनती की चाह है, फिर इस चाह के लिए हम काम करेंगे। यह संघ से दूर ले जाने और निष्क्रिय बनाने वाला दोष है।

मेरा निर्णय कभी न बदले। मेरा संकल्प कभी न बदले। बदले तो मेरा वर्तमान बदले। मुझे अपना वर्तमान और भविष्य पूरा बदलना है। मुझे अपनी कमियों और कमजोरियों को मिटाना है। उसके लिये जो जरूरी अभ्यास है उन अभ्यासों का अभ्यास करना है। मुझे मेरे गुरु, मेरी चाह, मेरे जीवन को एक गिनती होने वाले अर्थ में बदलना है।

अगर इंसान सिर्फ इतना तय कर ले कि वो मन के आवेश में आकर कुछ भी न करे, सिर्फ वो करे जो सही है, श्रेष्ठ है, सत्य है तो वो सबकी नजरों में सम्मान पाता है, प्यार पाता है, स्वयं आदर्श व प्रेरणा बनने के रास्ते पर चल पड़ता है। जीवन को स्वर्णिम बनाने का अवसर है। जीवन को महत्त्वपूर्ण बनाने का अवसर है। अपना कायाकल्प किया जा सकता है। समय बीतता जा रहा है। इस युद्ध के भागीदार बनें। मेरे विचार, मेरे चयन के हों। मेरा काम, मेरे चयन का हो। मेरा जीवन, मेरे चयन का हो। एक जोश और आंधी की जरूरत है। मौत और जीवन के बीच में ईश्वरीय जीवन जीने का अवसर है। धर्म की महागाथा में अमृत पान करने का महायज्ञ है। 'एक साधे सब सधे सब साधे सब जाय।''

मुझे कोई गीत प्रभावित न कर सके जो मेरे कर्म से संबंध नहीं रखता। मुझे कोई चेहरा प्रभावित न कर सके जो मेरे कर्म से संबंध नहीं रखता। मुझे कोई हाव-भाव व भावनाएँ प्रभावित न कर सकें जो मेरे कर्म से संबंध नहीं रखते। मुझे कोई कपड़े प्रभावित न कर सकें जो मेरे कर्म से संबंध नहीं रखते। मुझे कोई घर, सुविधा, तकनीकी उपकरण, आधुनिक खोज, आधुनिक जीवन व्यवहार प्रभावित न कर सके जो मेरे कर्म से संबंध नहीं रखते।

मैंने यह जीवन पाकर क्या महत्त्वपूर्ण किया। मेरा जीवन क्या काम आया। मैंने अपने जीवन को क्या नाम दिया। मेरे जीवन का लोग क्या अर्थ निकालेंगे। मेरे जीवन का क्या अर्थ निकल रहा है, क्या निकल सकता है, क्या अर्थ निकालने का मैं प्रयास कर सकता हूँ? मैंने जीवन का क्या उपयोग किया है? मेरे जीवन का क्या व्रत था और मैंने क्या व्रत निभाया। जीवन व्रत से जीवन का अर्थ बना। अर्थ मेरी उपलब्धि है तो, अर्थ से पैदा होने वाली प्रेरणा लोगों को चलने के लिये मार्ग दे गई। हुआ जो हुआ। अब सब कुछ बदलना है। अब इस युद्ध में सब जायज है। अब इस प्रलय के प्रांगण में, इस कारवां की खेह में मैं भी एक उत्तरदायी सिपाही हूँ। जो मुश्किल है वही तो करना है। जो सबके लिए असम्भव है वही मेरे जीवन का सम्भव सत्य हो। सिर्फ प्रार्थना और आराधना दीपक ही लौ को जीवित नहीं रख सकते उसके लिये तो साधना के तेल की जरूरत है। यानी कर्म की जरूरत है। अब कर्म से पीछे न हटें, कर्म कम्पन न करने लगे। लौ घटने के बजाए बढ़ती ही रहे यह तभी सम्भव है जब तेल घटने की बजाए बढ़ता रहे। यानी कर्म के साथ समझौता नहीं कर सकते। संसार ऐसा जुआ है जहाँ हर किसी को लगता है मेरे से ज्यादा कौन जानता है, इसलिए ईश्वरीय मार्ग को स्वीकारना, कार्य करते रहना बहुत कठिन है। अपने आपको पढते हुए ही इस कार्य को पढकर, समझकर, जीवन भर निभाया जा सकता है।

किसी और का चिंतन न करें, इससे कई दोष और गलतफहमियाँ दूर हो जाती हैं। क्योंकि आप ऐसा करोगे सब ऐसा नहीं करेंगे। जो ऐसा नहीं करेंगे उनका चिन्तन आपके प्रति अशुद्ध होगा। और जिनका चिंतन अशुद्ध

होगा वो आपसे दुर्व्यवहार की अपेक्षा करेंगे। लेकिन जब वैसा नहीं पाएंगे तो उनका भी चिंतन बदल जाएगा।

यहाँ पहुँचते-पहुँचते आत्मचिंतन का महत्त्व समझ आ गया था। शरीर को तीर्थ किस तरह बनाया जा सकता है? हम सही दिशा में किस तरह चल सकते हैं? इस शरीर में प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए यह उपयोगी, महत्त्वपूर्ण, जरूरी नहीं, यह अनिवार्य है। यह कोई बोझा नहीं है। भटकाव को बचाने के लिए, निर्भय बनाने के लिये, मानसिक संताप से बचाने के लिए, शक्ति के अपव्यय को रोकने के लिए जुझारू योद्धा है यह।

फिसलन या ढलान को अगर सरलतम शब्दों में समझें तो वो है हमारा निर्णय। अगर हम अपने आपको तोलते रहें कि कब हमारे निर्णय बदल रहे हैं, तो फिसलन या ढलान का अस्तित्व हमारे जीवन से निकल जाएगा। सब कोई वो करते हैं जो सब कोई करते हैं, क्या मैं वो नहीं कर सकता जो मैं करना चाहता हूँ। इसे कहते हैं ढलान के खिलाफ आगे बढ़ना।

मैं वो करता हूँ जिसमें संघ का हित है। किसी भी तरह का निर्णय मुझे निराश न करे क्योंकि मेरी निराशा यह बताती है मैं संघ के बारे में नहीं सोच रहा अपने बारे में सोच रहा हूँ। अन्त समय में वही साधना काम आती है जो अंधे और बहरे बनकर की है। क्योंकि हम वो देख और सुन पाते हैं जो अंधा या बहरा व्यक्ति देख या सुन नहीं पाता। मुझे अगर साधना करनी है तो साधना करनी है अन्य पचड़ों को देखने और सुनने की शक्ति खो चुका हूँ। और बहुत खुश भी हूँ क्योंकि यही सच है। परमात्मा कहाँ-कहाँ प्रकट नहीं हुआ। अगर वो मेरे लिए हर जगह प्रकट हैं तो मुझे किस बात की चिन्ता है। वो यहाँ भी है और वहाँ भी था।

भेड़ों के साथ चलते-चलते शेरों का शोर बन्द हो गया था। हमारी सिराओं में रक्त ठंडा पड़कर जम गया था। इसमें दुबारा उबाल और जोश भरने के लिए मानवता के अमर पुजारी पूज्य श्री तनसिंहजी ने क्षत्रिय युवक संघ रच डाला जिसकी किलकारियाँ आज चारों ओर सुनाई दे रही हैं। ऐसे अद्भुत, विलक्षण और अद्वितीय सद्गुरु को कोटिश: प्रणाम और चरण वन्दन। जय संघशक्ति। जय क्षात्र धर्म।

अँगारों से भी आँसू न निकले,
तलवारों पर सिर वार दिए,
सर कट के भी धड़ न रुके,
लपटों में जिस्म जलाया है,
तब कहीं जाकर ये केसरिया रंग पाया है।

आगे देखें-

हल्दी का रंग भी लाल हुआ, प्रताप की आँधी रुकी नहीं,
लहू के सागर बहा दिए केसरिया पगड़ी झुकी नहीं,
इतिहास अमर हो गए कवियों की कलम थमी नहीं,
चीखों से गूंजा नभ भी होगा, घोड़ों की टापें थमी नहीं।

और सुनें-

हल्दीघाटी इतिहास है शेरों की दहाड़ का,
जिसके कंधों पर भार था मेवाड़ का,
छक्के छुड़ाने वाले दुश्मनों की हर चाल का,
आँधी और आग का, बिजली और तूफान का,
यह इतिहास है चेतक महान का।

तलवार उठाने वाला क्षत्रिय नहीं है। तलवार उठाकर रक्षा करने वाला क्षत्रिय है। प्राथमिकता जब विचारों तक पहुँच जाती है तब चमत्कार होता है। क्या सोचना है क्या करना है इसकी प्रक्रिया स्वत: होने लगती है। जीवन व्यवहार निभाने में भी व्यक्ति श्रेष्ठ हो जाता है। आदमी के विचार भी भाग्य से बनते हैं।

सबसे श्रेष्ठ बात होती है अपने निर्णय पर बने रहना। चाहे लाख बिजोग आए, चाहे मन लाखों जतन करे, आपका निर्णय कभी न बदले। यही साधना है, जिसको साधना है। इसी से आपके जीवन में, आपके निर्णय में परिपक्वता आएगी। आयु के दिन बहुत कम होते हैं इसलिए अलग-अलग प्रयोग न करें।

TRAIN; इस शब्द में सब कुछ छिपा हुआ है। T यानी थकूंगा नहीं, R मतलब रूकूंगा नहीं, A मतलब आत्मचिंतन, I मतलब INTEREST यानी रुची लेकर काम करें और N का मतलब, मेरा निर्णय (N) कभी न बदले।

पतिभक्ता गान्धारी

– संकलित

संसार की पतिव्रता देवियों में गान्धारी का स्थान बहुत ऊँचा है। ये गान्धार राज सुबल की पुत्री और शकुनि की बहिन थीं। इन्होंने कुमारी-अवस्था में ही भगवान् शंकर की बड़ी आराधना की और उनसे सौ पुत्रों का वरदान प्राप्त किया। इन्हें मालूम हुआ कि इनका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्र से होने वाला है, उसी समय से इन्होंने अपनी दोनों आँखों पर पट्टी बाँध ली। इन्होंने सोचा कि जब मेरे पति ही नेत्र सुख से वंचित हैं तब मुझे संसार को देखने का क्या अधिकार है। उस समय से जब तक ये जीवित रहीं अपने उस दृढ़ निश्चय पर अटल रहीं। पति के लिये इन्द्रिय सुख के त्याग का ऐसा अनूठा उदाहरण संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। इनका यह तप और त्याग अनुपम था, संसार के लिये एक अनोखी वस्तु थी। ये सदा अपने पति के अनुकूल रहीं। इन्होंने ससुराल में आते ही अपने चरित्र और सद्गुणों से पति एवं उनके सारे परिवार को मुग्ध कर लिया। धन्य पतिप्रेम!

देवी गान्धारी जैसी पतिव्रता थीं वैसी निर्भीक और न्यायप्रिय भी थीं। ये सदा सत्य, नीति और धर्म का ही पक्षपात करती थीं, अन्याय का कभी समर्थन नहीं करती थीं। इनके पुत्रों ने देवी द्रोपदी के साथ भरी सभा में जो अत्याचार किया था, उसका इनके मन में बड़ा दुःख था। वे इस बात से अपने पुत्रों पर प्रसन्न नहीं हुईं। जब इनके पति राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों की बातों में आकर दुबारा पाण्डवों को द्यूत के लिये बुला भेजा, उस समय ये बड़ी दुःखी हुईं। उन्होंने जुए का विरोध करते हुए अपने पतिदेव से कहा-'स्वामी! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़ के समान रोने-चिल्लाने लगा था, इसलिये उसी समय परमज्ञानी विदुर ने कहा था कि इस पुत्र का परित्याग कर दो। मुझे तो यह बात याद करके यही मालूम होता है कि यह कुरुवंश का नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र! आप अपने दोष से सबको विपत्ति में न डालिये। इन ढीठ मूर्खों की 'हाँ-में-हाँ' न मिलाइये। इस वंश के नाश के कारण मत बनिये। बँधे हुए पुल को मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त हैं और वैर-विरोध से विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं है। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुष के चित्त पर शास्त्र के उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु आप वृद्ध होकर बालकों की-सी बात करें-यह अनुचित है। उस समय आप अपने पुत्र-तुल्य पाण्डवों को अपनाये रक्खें। कहीं वे दुःखी होकर आपसे विलग न हो जायें। कुलकलंक दुर्योधन को त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने मोहवश उस समय विदुरजी की बात नहीं मानी, उसी का यह फल है। शान्ति, धर्म और मंत्रियों की सम्मति से अपनी विचारशक्ति को सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपके लिये बड़ा दुःखदायी सिद्ध होगा, राजलक्ष्मी क्रूर के हाथ में पड़कर उसी का सत्यानाश कर देती है।' गान्धारी के इन वाक्यों से धर्म, नीति और निष्पक्षता टपकी पड़ती है। ये दुर्योधन को भी उसकी अनुचित कार्रवाइयों पर बराबर टोकती रहती थीं और उसकी उद्दण्डता के लिये उसे फटकारती थीं और उसकी अनीति के भावी दुष्परिणाम का भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थीं। पर दुर्योधन के सिर पर काल नाच रहा था, वह इन सबकी हितभरी बातों पर ध्यान नहीं देने देता था।

पाण्डवों की ओर से संधि का प्रस्ताव लेकर जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये और वे भी दुर्योधन को समझाकर हार गये तब धृतराष्ट्र ने देवी गान्धारी को बुलाकर उनसे कहा कि 'अब तुम्हीं अपने पुत्र को समझाओ। वह हम लोगों में से तो किसी की बात नहीं सुनता।' पति की यह बात सुनकर गान्धारी ने कहा-'राजन्! आप पुत्र के मोह में फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषय में सबसे अधिक दोषी तो आप ही हैं। आप यह

जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसी की बुद्धि के पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधन को तो काम, क्रोध और लोभ ने अपने चुंगल में फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कार से भी उसे इस मार्ग से नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्र को बिना कुछ सोचे-समझे राज्य की बागडोर सौंप दी; उसी का आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घर में जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा किये चले जा रहे हैं। ऐसा करके आप पाण्डवों की दृष्टि में अपने-आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। देखिये, यदि साम या भेद से ही विपत्ति टाली जा सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान स्वजनों के प्रति दण्ड का प्रयोग क्यों करेगा?' गान्धारी की यह युक्ति कैसी निर्भीक, निष्पक्ष, हितभरी, नीतिपूर्ण और सच्ची थी।

उसके बाद गान्धारी ने अपने पुत्र को भी बुलाकर उसे समझाना शुरू किया। वे बोलीं-'बेटा! मेरी बात सुनो। तुमसे तुम्हारे पिता, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर जी ने जो बात कही है उसे स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवों से संधि कर लोगे तो सच मानो, इससे पितामह भीष्म की, तुम्हारे पिताजी की, मेरी और द्रोणाचार्य आदि हितैषियों की तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। बेटा! राज्य को पाना, बचाना और भोगना अपने हाथ की बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है वही राज्य की रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्य को अर्थ से च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओं को जीतकर ही राजा सारी पृथ्वी को जीत सकता है। देखो- जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्ग में ही मूर्ख सारथी को मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियों को काबू में न रक्खा जाए तो वे मनुष्य का नाश करने के लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं और जो सब काम सोच-समझकर करता है, उसके पास चिरकाल तक लक्ष्मी बनी रहती है। तात! तुम्हारे दादा भीष्मजी ने और गुरु द्रोणाचार्य जी ने जो बात कही है वह बिल्कुल ठीक है। वास्तव में श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम श्रीकृष्ण की शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षों का हित होगा। वत्स! युद्ध करने में कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है तो सुख कहाँ से होगा। यदि तुम अपने मंत्रियों के सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवों का जो न्यायोचित भाग है वह उन्हें दे दो। पाण्डवों को जो तेरह वर्ष तक घर से बाहर रक्खा गया, वह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब संधि करके इसका मार्जन कर दो। तात! संसार में लोभ करने से किसी को सम्पत्ति नहीं मिलती। अत: तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवों से संधि कर लो।' कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था। इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं तथा वे श्रीकृष्ण और अर्जुन की महिमा भी जानती थीं।

दुष्ट दुर्योधन पर गान्धारी के इस उत्तम उपदेश का कोई असर नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और अठारह दिनों तक कुरुक्षेत्र के मैदान में भीषण मार-काट हुई। युद्ध के दिनों में दुर्योधन प्रतिदिन इनसे प्रार्थना करता कि 'माँ! मैं शत्रुओं के साथ लोहा लेने जा रहा हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे युद्ध में मेरा कल्याण हो!' गान्धारी में पतिव्रत का बड़ा तेज था। वे यदि पुत्र को विजय का आशीर्वाद दे देतीं तो वह अन्यथा न होता। परन्तु वे देतीं कैसे? वे जानती थीं कि दुर्योधन अत्याचारी है। अत्याचारी के हाथों में कभी राज्यलक्ष्मी टिक नहीं सकती; इसलिये वे हर बार यही उत्तर देतीं- 'बेटा! जहाँ धर्म है वहाँ विजय है। विजय चाहते हो तो धर्म का आश्रय लो, अधर्म का परित्याग करो।' उन्होंने दुर्योधन का कभी पक्ष नहीं लिया। परन्तु जब उन्होंने सुना कि मेरे सौ-के-सौ पुत्र मारे गये तो शोक के वेग से उनका क्रोध उमड़ पड़ा और वे पाण्डवों को शाप देने का विचार करने लगीं। भगवान् वेदव्यास तो मन की बात जान लेते थे। उन्हें जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने गान्धारी के पास आकर उन्हें सान्त्वना दी और उनको असत्-संकल्प से रोका। उस समय पाण्डव भी वहाँ मौजूद थे। माता गान्धारी के मन में क्षोभ देखकर युधिष्ठिर उनके पास गये और अपने को धिक्कारते हुए ज्यों ही उनके

चरणों पर गिरने लगे कि गान्धारी की क्रोधभरी दृष्टि पट्टी में से होकर महाराज युधिष्ठिर के नखों पर पड़ी। इससे उनके सुन्दर लाल-लाल नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखकर उनके भाई भी मारे भय के इधर-उधर छिपने लगे। उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारी का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने माता के समान पाण्डवों को धीरज दिया। उपर्युक्त घटना से गान्धारी के अनुपम पतिव्रत-तेज का पता लगता है। अन्त में गान्धारी ने अपना क्रोध श्रीकृष्ण पर निकाला। अथवा यों कहना चाहिये कि अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने ही उनकी मति पलटकर पाण्डवों को उनके कोप से बचा लिया और उनका अभिशाप अपने ऊपर ले लिया। देवी गान्धारी ने कुरुक्षेत्र में जाकर जब वहाँ का हृदय विदारक दृश्य देखा तो वे अपने शोक को संभाल न सकीं। वे क्रोध में भरकर श्रीकृष्ण से बोलीं- 'कृष्ण! पाण्डव और कौरव अपनी फूट के कारण नष्ट ही हुए हैं; किन्तु तुमने समर्थ होते हुए भी अपने सम्बन्धियों की उपेक्षा क्यों कर दी? तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना भी थी। तुम दोनों को दबा सकते थे और अपने वाक्कौशल से उन्हें समझा भी सकते थे; परन्तु तुमने जान-बूझकर कौरवों के संहार की उपेक्षा कर दी। इसलिये अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पति की सेवा करके जो तप संचय किया है उसी के बल पर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हुए कौरव और पाण्डवों की तुमने उपेक्षा कर दी, उसी प्रकार तुम अपने बन्धु-बान्धवों का भी वध करोगे और स्वयं भी अनाथ की तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंश की स्त्रियाँ आर्तनाद कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर सिर पकड़कर रोयेंगी।'

गान्धारी के ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्ण मुस्कराये और-'मैं तो जानता था कि यह बात इसी तरह होने वाली है। शाप देकर तुमने होनी को ही बतलाया है। इसमें संदेह नहीं कि वृष्णिवंश का नाश दैवी कोप से ही होगा। इसका नाश भी मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। मनुष्य क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिये ये यदुवंशी आपस के कलह से ही नष्ट होंगे।'

युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के बाद देवी गान्धारी कुछ समय तक उन्हीं के पास रहकर अन्त में अपने पति के साथ वन में चली गयीं और वहाँ तपस्वियों का-सा जीवन बिताकर तपस्वियों की भाँति ही उन्होंने अपने पति के साथ दावाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और पति के साथ ही कुबेर के लोक में चली गयीं। इस प्रकार पतिपरायण गान्धारी ने इस लोक में पति की सेवा कर परलोक में भी पति का सान्निध्य एवं सेवा प्राप्त की-जो प्रत्येक पतिव्रता का अभीष्ट लक्ष्य होता है। प्रत्येक पतिव्रता नारी को गान्धारी के चरित्र का मनन कर उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

●

मेरे लिए कौन कष्ट सहेगा? केवल वही सह सकता है, जिसके हृदय में मेरे लिये उत्कट अनुराग होगा। अनुराग की जितनी उत्कटता होगी, कष्ट सहन की उतनी ही अधिक क्षमता होगी। इसलिये मैं अपने साथियों की केवल यही परीक्षा किया करता हूँ कि वे मुझे कितनी उत्कटता से चाहते हैं और क्या उनका अनुराग अव्यभिचारी और एकीभाव से परिपूर्ण है? जो उपरोक्त कसौटी पर खरे नहीं उतरते, वे मेरे प्राण लेकर भी मेरे लिए क्या कष्ट सह पायेंगे।

– पू. तनसिंहजी

छत्रसाल बुन्देला

– भागीरथसिंह लूणोल

नरेश चंपतराय बुंदेला एवं महारानी लालकुंवरि के पुत्र थे महाराजा छत्रसाल। 4 मई सन् 1649 को गहड़वाल वंश की बुंदेला शाखा के ओरछा (उ.प्र.) के रुद्रप्रताप सिंह जी वंशज थे और टीकमगढ़ जिले के लिघोरा विकास खंड के अंतर्गत पहाड़ी नाम गाँव में महाराजा छत्रसाल का जन्म हुआ। बुंदेलखण्ड में ओरछा राज्य के प्रतापी राजा रुद्रप्रताप के बारह पुत्रों में से एक उदयजीत को महोबा की जागीर मिली। इन्हीं उदयजीत की चौथी पीढी में चम्पतराय हुए जो प्रबल पराक्रमी एवं यशस्वी शासक थे। वनभूमि की गोद में जन्में, वनदेवों की छाया में पले, वनराज जैसे इस वीर का उद्‌गम ही तोप, तलवार और रक्त प्रवाह के बीच हुआ।

'महाराजा छत्रसाल' भारत के मध्ययुग के एक महान प्रतापी योद्धा थे जिन्होंने मुगल शासक औरंगजेब के कई सेनापतियों को युद्ध में पराजित करके बुन्देलखण्ड में अपना राज्य स्थापित किया और 'महाराजा' की पदवी प्राप्त की।

छत्रसाल बुन्देला का जीवन मुगलों की सत्ता के खिलाफ संघर्ष और बुंदेलखंड की स्वतंत्रता स्थापित करने के लिये जूझते हुए निकला। महाराजा छत्रसाल बुन्देला अपने जीवन के अन्तिम समय तक आक्रमणों से जूझते रहे। महाराजा चम्पतराय बुंदेला के साथ उनकी रानी लाल कुँवरि सदैव युद्ध क्षेत्र में साथ ही रहती थी और अपने पति को उत्साहित करती रहती थी। चम्पतराय जब मुगल सेना से घिर गए तो उन्होंने अपनी पत्नी रानी लाल कुँवरि के साथ अपनी ही कटार से प्राण त्याग दिए किन्तु मुगलों के सामने झुकना स्वीकार नहीं किया। छत्रसाल अपने बड़े भाई अंगद राय के साथ कुछ दिनों मामा के घर रहे किन्तु उनके मन में सदैव मुगलों से बदला लेकर पितृ ऋण से मुक्त होने की अभिलाषा थी।

इनको पाँच वर्ष की आयु में ही युद्ध कौशल की शिक्षा हेतु अपने मामा साहेब सिंह धंधेरे के पास देलवारा भेज दिया गया था। माता-पिता के निधन के कुछ समय पश्चात् ही वे बड़े भाई अंगद बुन्देला के साथ देवगढ़ चले गये। बाद में अपने पिता के वचन को पूरा करने के लिये छत्रसाल बुन्देला ने परमार वंश की कन्या देवकुंअरि से विवाह किया। जिसने आँख खोलते ही सत्ता संपन्न दुश्मनों के कारण अपनी पारंपरिक जागीर छिनी पायी हो, निकटतम स्वजनों के विश्वासघात के कारण जिसके बहादुर माँ-बाप ने आत्महत्या की हो, जिसके पास कोई सैन्य बल अथवा धनबल भी न हो, ऐसे 12-13 वर्षीय बालक की मनादेशा क्या हो सकती है, आप हम कल्पना कर सकते हैं? परन्तु उसके पास था राजपूती शौर्य, संस्कार, बहादुर माँ-बाप का अदम्य साहस और 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का गहरा आत्मविश्वास। इसलिए वह टूटा नहीं, डूबा नहीं, आत्मघात नहीं किया वरन् एक रास्ता निकाला। उसने अपने भाई के साथ पिता के दोस्त राजा जयसिंह के पास पहुँचकर सेना में भरती होकर आधुनिक सैन्य प्रशिक्षण लेना प्रारम्भ कर दिया।

राजा जयसिंह तो दिल्ली सल्तनत के लिए कार्य कर रहे थे अत: औरंगजेब ने जब उन्हें दक्षिण विजय का कार्य सौंपा तो छत्रसाल बुन्देला को इसी युद्ध में अपनी बहादुरी दिखाने का पहला अवसर मिला। मई 1665 में बीजापुर युद्ध में असाधारण वीरता छत्रसाल बुन्देला ने दिखायी और देवगढ़ (छिंदवाड़ा) के गौंड राजा को पराजित करने में तो छत्रसाल बुन्देला ने जी-जान लगा दिया। इस सीमा तक कि यदि उनका घोड़ा, जिसे बाद में 'भलेभाई' के नाम से विभूषित किया गया, उनकी रक्षा न करता तो छत्रसाल शायद जीवित न बचते। इतने पर भी जब विजयश्री का सेहरा उनके सिर पर न बाँध मुगल भाई-भतीजेवाद में बंट गया तो छत्रसाल बुन्देला का स्वाभिमान आहत हुआ और उन्होंने मुगलों की बदनीयती समझ दिल्ली सल्तनत की सेना छोड़ दी।

इन दिनों राष्ट्रीयता के आकाश पर छत्रपति का सितारा चमचमा रहा था। छत्रसाल दुखी तो थे ही, उन्होंने छत्रपति शिवाजी महाराज से मिलना ही इन परिस्थितियों में उचित समझा और सन् 1668 में दोनों राष्ट्रवीरों की जब भेंट हुई तो छत्रपति शिवाजी महाराज ने छत्रसाल बुन्देला को उनके उद्देश्यों, गुणों और परिस्थितियों का आभास कराते हुए स्वतंत्र राज्य स्थापना की मंत्रणा दी।

करो देस के राज छतारे, हम तुम तें कबहूं नहीं न्यारे।
दौर देस मुगलन को मारो, दपटि दिली के दल संहारो।
तुम हो महावीर मरदाने, करि हो भूमि भोग हम जाने।
जो इतही तुमको हम राखें, तो सब सुयस हमारे भाषें।

शिवाजी से स्वराज का मंत्र लेकर सन् 1670 में छत्रसाल वापस अपनी मातृभूमि लौट आये।

औरंगजेब छत्रसाल को पराजित करने में सफल नहीं हो पाया। इधर राजस्थान में दुर्गादास जी ने उसके नाक में दम कर रखा था उधर महाराष्ट्र में शिवाजी ने और इधर छत्रसाल, इन सब से परेशान होकर औरंगजेब ने रणदूलह के नेतृत्व में 30 हजार सैनिकों की टुकड़ी मुगल सरदारों के साथ छत्रसाल का पीछा करने के लिए भेजी थी। छत्रसाल अपने रणकौशल व छापामार युद्ध नीति के बल पर मुगलों के छक्के छुड़ाता रहा। छत्रसाल को मालूम था कि मुगल छलपूर्ण घेराबंदी में सिद्धहस्त हैं। उनके पिता चंपतराय मुगलों से धोखा खा चुके थे। छत्रसाल ने मुगल सेना से इटावा, खिमलासा, गढ़ाकोटा, धामौनी, रामगढ़, कंजिया, मडियादो, रहली, रानगिरि, शाहगढ़, वांसाकला सहित अनेक स्थानों पर लड़ाई लड़ी। छत्रसाल की शक्ति बढ़ती गयी। बन्दी बनाये गये मुगल सरदारों से छत्रसाल ने दंड वसूला और उन्हें मुक्त कर दिया। बुन्देलखंड से मुगलों का एकछत्र शासन छत्रसाल ने समाप्त कर दिया।

छत्रसाल बुन्देला के राष्ट्र प्रेम, वीरता और हिन्दुत्व के कारण छत्रसाल बुन्देला को भारी जन समर्थन प्राप्त था। छत्रसाल बुन्देला ने एक विशाल सेना तैयार कर ली। इसमें 72 प्रमुख सरदार थे। वसिया के युद्ध के बाद छत्रसाल बुन्देला को 'महाराजा' की मान्यता मिली। उसके बाद छत्रसाल बुन्देला ने 'कालिंजर का किला' भी जीता और मांधाता को किलेदार घोषित किया। छत्रसाल ने 1678 में पन्ना में राजधानी स्थापित की। विक्रम संवत् 1744 में योगीराज प्राणनाथ के निर्देशन में छत्रसाल का राज्याभिषेक किया गया था।

छत्रसाल के शौर्य और पराक्रम से आहत होकर मुगल सरदार तहवर खाँ, अनवर खाँ, सहरूदीन, हमीद बुन्देलखंड से दिल्ली का रुख कर चुके थे। बहलोद खाँ छत्रसाल के साथ लड़ाई में मारा गया था। मुराद खाँ, दलेह खाँ, सैयद अफगन जैसे सिपहसलार बुन्देला वीरों से पराजित होकर भाग गये थे। छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ आजीवन क्षत्रिय एकता के संदेश देते रहे। उनके द्वारा दिये गये उपदेश 'कुलजम स्वरूप' में एकत्र किये गये। पन्ना में प्राणनाथ का समाधि स्थल है जो अनुयायियों का तीर्थ स्थल है। प्राणनाथ ने इस अंचल को रत्नगर्भा होने का वरदान दिया था। किंवदन्ती है कि जहाँ तक छत्रसाल बुन्देला के घोड़े की टापों के पदचाप बनी वह धरा धनधान्य, रत्न संपन्न हो गयी। छत्रसाल बुन्देला के विशाल राज्य के विस्तार के बारे में यह पंक्तियाँ गौरव के साथ दोहरायी जाती हैं–

इत यमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस।।

छत्रसाल को अपने जीवन के अन्तिम पलों में भी आक्रमणों का सामना करना पड़ा।

छत्रसाल बुन्देला अपने समय के महान शूरवीर, संगठक, कुशल और प्रतापी राजा थे। छत्रसाल बुन्देला को अपने जीवन की संध्या में भी आक्रमणों से जूझना पड़ा। 1729 में सम्राट मुहम्मद शाह के शासनकाल में प्रयाग के सूबेदार बंगस ने छत्रसाल पर आक्रमण किया। उनकी इच्छा एरच, कोंच (जालौन), सेवड़ा, सोपरी, जालौन पर अधिकार कर लेने की थी। छत्रसाल को मुगलों से लड़ने में दतिया, सेवड़ा के राजाओं ने सहयोग नहीं दिया। तब छत्रसाल बुन्देला ने बाजीराव पेशवा को संदेश भेजा–

'जो गति भई गजेन्द्र की सो गति पहुँची आय'
'बाजी जात बुन्देल की राखो बाजीराव'

बाजीराव सेना सहित सहायता के लिये पहुँचा। छत्रसाल और बाजीराव ने बंगस को 30 मार्च, 1729 को पराजित कर दिया। बंगस हार कर वापिस लौट गया। छत्रसाल ने उपहार स्वरूप बाजीराव को बहुत कुछ दिया और साथ ही अपनी पुत्री मस्तानी का सम्बन्ध भी बाजीराव प्रथम के साथ किया।

छत्रसाल की पुत्री मस्तानी, बाजीराव प्रथम की द्वितीय पत्नी बनी। मस्तानी नामक अपने ग्रन्थ में इतिहासकार डी जी गोडसे ने कहा है कि छत्रसाल और बाजीराव प्रथम के बीच सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसे थे। 20 दिसम्बर, 1731 को मृत्यु के पहले ही छत्रसाल ने महोबा और उसके आस-पास का क्षेत्र बाजीराव प्रथम को सौंप दिया था।

महाराजा छत्रसाल साहित्य के प्रेमी एवं संरक्षक थे। कई प्रसिद्ध कवि उनके दरबार में रहते थे।

'कवि भूषण' उनमें से एक थे जिन्होंने 'छत्रसाल दशक' लिखा है। इसके अलावा लाल कवि, बक्षी हंसराज आदि भी थे। इसलिए उस महान वीर के लिए कहा गया है-

'छता तोरे राज में धक धक धरती होय'
जित जित घोड़ा मुख करे उत उत फत्ते होय'

मध्यप्रदेश का छतरपुर नगर तथा छतरपुर जिला महाराज छत्रसाल के नाम पर है। छतरपुर के बहुत से स्थानों के नाम उनके नाम पर रखे गए हैं, जैसे महाराजा छत्रसाल संग्रहालय। दिल्ली का छत्रसाल स्टेडियम भी उनके नाम पर ही है।

●

पृष्ठ 14 का शेष

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

कई क्षेत्रों, यथा कला, साहित्य, राजनीति-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र या भाषाओं आदि के ज्ञान की भी जरूरत है। जो व्यक्ति जितनी अधिक भाषाएँ जानता है, वह उतने ही अधिक विषयों में प्रवीण हो जाता है; फिर वह उतनी ही अधिक दक्षता एवं सामर्थ्य से अपने कार्यों को सम्पन्न कर सकता है और अपने सहकर्मियों के ऊपर वह उतना ही अधिक प्रभाव विस्तार कर सकता है। यदि अपने कार्य के विषय में हमारा ज्ञान अपर्याप्त है, तो हम दूसरों को प्रभावित नहीं कर सकते। कार्य-विषयक ज्ञान का अभाव हमें अपमानजनक स्थिति में डाल सकता है। ज्ञान सचमुच ही एक महान शक्ति है। ज्ञान-ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखना चाहिए। कार्य की उत्कृष्टता या कार्य में दक्षता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

'कार्यालय-प्रबन्धन के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं के हल में विनोद और हास-परिहास की क्षमता भी बहुत उपयोगी है। एक प्रसन्न मन गम्भीर-से-गम्भीर समस्या के समाधान में सक्षम हो सकता है। एक निराश मन किसी तुच्छ समस्या को भी बहुत गम्भीर समझेगा और उससे कार्यालय में सौहार्द्र का भाव विक्षुब्ध हो सकता है। कर्मचारी यदि प्रसन्न रहें तो उनकी कार्यक्षमता भी बढ़ती है। अत: हास-परिहास और प्रसन्नता का भाव बड़ा महत्त्वपूर्ण है। परन्तु हास-परिहास निरर्थक गपशप न बन जाए, इसका ध्यान रखना चाहिए। एक अच्छा चुटकुला बड़ी विस्फोटक स्थिति को निष्प्रभावी कर सकता है, पर अपनी सीमा पार करने पर हँसी-मजाक भी झगड़े की जड़ बन सकता है। वैसे आम तौर पर हास्य-विनोद एक ऐसी शक्ति है, जो तनावों को छिन्न-भिन्न करने में मदद करती है। इसका समुचित प्रयोग जीवन को सफल बनाने में एक बड़ा योगदान कर सकता है।'

(क्रमश:)

मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल वृत्ति भावात्मिका है। केवल तर्क-बुद्धि या विवेचना से हम किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते।

– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

अनूठी शत्रुता

– धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

गुजरात के देशी रजवाड़ों में बड़ा रजवाड़ा भावनगर का था। भावनगर क्षेत्र गोहिलवाड़ के नाम से जाना जाता था और आज भी जाना जाता है। भावनगर राज के दरबार नामदार वजेसंगजी बापु थे, उस समय की बात है यह। वे गोहिलवाड़ के 1800 गाँवों के मालिक रूप में जाने जाते थे। उनमें भावनगर के अलावा कुछ अमरेली जिले के गाँव भी थे। अमरेली जिले के गाँवों को, उस इलाके को काठियावाड़ कहते थे क्योंकि वहाँ काठी राजपूतों की गद्दी थी। काठी राजपूतों में खाचर, खुमाण, वाळा, धाधल आदि खांपे थी। एक बार अमरेली जिले के सावर-कुंडला गाँव को लेकर भावनगर के वजेसंगजी और खुमाण जोगीदास के बीच टकराव हुआ। सावर-कुंडला तहसील भावनगर महाराज ने अपने हस्तगत कर लिया। तब काठी जोगीदास खुमाण ने भावनगर महाराज से बगावत कर दी। इतने बड़े भावनगर ठिकाने की ताकत के सामने जोगीदास अपने गिनती के साथियों के साथ संघर्ष कर रहा था।

एक दिन भावनगर की महारानी जी अपने दोनों कुंवर दादभा और नानभा को लेकर हडवा गाँव रांदल माताजी के यहाँ धोक देने जा रही थी, जो दोनों पुत्रों की प्राप्ति पर खुशी प्रकट करने बैलगाड़ी में बैठकर जा रही थी। संयोगवश उसी मार्ग से भावनगर का शत्रु अपने कुछ साथियों के साथ घोड़ों पर बैठा निकल रहा था। महारानी को बैलगाड़ी में देखकर जोगीदास का एक साथी बोला- 'जोगीदास आज बड़ा अच्छा मौका है। आज भावनगर के दोनों बालकुंवर राणीसा के साथ हैं। इन्हें मारकर अपना वैर वसूल कर ले।' तब जोगीदास खुमाण कहता है-'मेरा वैर राजा से है, कुंवरों से नहीं और राणीसा तो मेरी बहन है, तब दोनों कुंवर तो मेरे भानजे हैं। अगर मैं इनके सामने आँख भी दिखाऊँ तो मेरा ईश्वर रूठे। मेरा धर्म नष्ट हो जाए।'

इतने में बैलगाड़ी में बैठे बाल कुंवर दादभा-नानभा ने बाल-सहज हठ कर ली और कहने लगे हमें घोड़े पर बैठना है। बाल हठ में कौन समझाए कि घोड़े वाले सवार वैरी हैं। बालहठ के सामने माता की ममता झुक गई। राणी माँ के गाड़ी चालक ने आवाज दी-'रुको जोगीदास! दोनों राजकुंवर हठ कर रहे हैं कि उन्हें आपके घोड़े पर बैठना है।' जोगीदास ने बड़ी नम्रता से कहा-'ले आओ दोनों कुंवरों को'। तुरन्त राणी माँ ने जोगीदास के आगन्तुक साथी को दोनों कुंवर सौंप दिए। दोनों कुंवरों को घोड़े पर बैठाया गया। घोड़ा बैलगाड़ी के आगे-आगे चल रहा है। घोड़ों पर बैठकर रो रहे बालक शान्त हो गए। राणी माँ को अपने लाडलों को राज्य के वैरी, बागी, जोगीदास खुमाण को सौंपते कितना विश्वास रहा होगा जोगीदास पर। कुछ दूर चलने के बाद जोगीदास ने घोड़ा रोका और अपने साथी को कहा कि दोनों कुंवरों को राणी माँ के पास बैलगाड़ी में पहुँचा दो। कुंवरों से कहा-'यहाँ मेरे इलाके की सीमा पूरी होती है। आप महाराज वजेसंगजी को मेरी ओर से राम-राम कहना और राणी जी को जय नारायण कहना।'

दोनों कुँवर बैलगाड़ी में वापस राणी माँ के पास आ गए। उन्होंने कहा कि जोगीदास मामा ने माँ आपको जय नारायण और बापु को राम-राम कहा है और कहा है कि यह कुंडला गाँव से मेरी सीमा समाप्त हो गई है और अब आगे नहीं जा सकता। राणी माँ के इशारे पर बैलगाड़ी के साथ चल रहे एक सरदार ने जोगीदास को कहा कि राणी माँ ने कहा है कि आपका आपस का वैर मिटाना है। वे सावर कुंडला या जो चाहे दिलवा कर वैर समाप्त करवा देंगी। तब बागी जोगीदास ने उस सरदार को कहा-'राणी माँ मेरी बहन है। उसे तो मुझे देना चाहिए। अगर मैं न दे सकूं तो अलग बात है, पर मुझे लेने का हक नहीं है।

मेरा हिसाब मैं राजा वजेसंगजी से कर लूंगा।' हाथ में आए वैरी के परिवार को किसी प्रकार कष्ट न देकर बड़े मान सहित भावनगर सीमा तक पहुँचाया। कैसा अनोखा था जोगीदास खुमाण का वैर।

थोड़े समय बाद भावनगर महाराज के पिताजी का निधन हो गया। गाँव-गाँव से सभी लोग राजदरबार में शोक प्रकट करने आते हैं। ऐसे तो जोगीदास भावनगर रजवाड़े का वैरी है लेकिन शोक में भागीदार बनने के लिए अमरेली से आहिर जाति के साथ मुँह ढककर राजदरबार में आया। थोड़ी देर में अन्य सभी रोकर-चुप हो गये किन्तु मुँह ढककर बैठा जोगीदास विलाप कर रहा है। भावनगर महाराज समझ गये कि यह जोगीदास खुमाण ही है। वे अपनी बैठक से उठे और जोगीदास के पास जाकर उसकी पीठ थपथपाकर बोले-'अब बस करो जोगीदास खुमाण।' राज्य का बागी वैरी ऐसे तो कभी हाथ में नहीं आता आज सामने से आया जानकर सामन्तों ने तलवारें खींची और जोगीदास को पकड़ने को उतारु हुए। इतने में राजा ने हुक्म दिया-'खरबदार अगर किसी ने जोगीदास को छुआ तो उसकी खैर नहीं। वह कोई वैर लेने नहीं मेरे दुख में साथ देने आया है। उसे सभी के साथ भोजन जिमाओ और सम्मान के साथ भावनगर राज्य की सीमा तक सुरयित पहुँचा दो।'

दोनों वैरी, लेकिन अनूठी है उनकी शत्रुता। ●

फार्म-4 (नियम-8)

1.	प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4.	प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5.	सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-4-2022

लक्ष्मणसिंह
प्रकाशक

संघ-साधना

– रतन सेतरावा

उतिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत

अर्थात्- उठो-जागो और जागकर औरों को जगाओ

स्वामी विवेकानन्द जी का यह कथन संघ का मूल मंत्र ही बन गया है। संघ साधना, संघ जीवन और संघ के आदर्शों को संघ से जुड़ने के बाद समझ पायी हूँ। जब प्रथम शिविर किया था तब एकदम अबोध और सामाजिकता से अनजान थी। शिविरों में जाने के बाद जान पायी कि ज्ञान केवल किताबों में नहीं है। वहाँ एक वक्ता बिना थके बोलता रहता था और हम बिना पलक झपके सुनती रहती थी। इतिहास की बातें, संस्कारों की महिमा और कर्तव्यों की भाषा सब यहीं आकर तो जानी है।

हम शिविरों की दिनचर्या में ऐसी रम जाती कि समय और दिनों का कोई ज्ञान ही नहीं रहता। प्रात: प्रार्थना से रात्रि चर्चा तक का समय व्यस्त पर आनन्दमय होता। खाली समय में या तो परिचय बढाती या विनोद सभा अथवा अन्य रात्रि-कालीन सभा की तैयारी करने में लगी रहती। विनोद सभा के लिए बालिकाएँ कभी 'सावित्री-यमराज' वार्तालाप के मंचन की सोचती तो कभी 'द्रोपदी चीर हरण', 'हाडी रानी के शीश त्याग' या 'लक्ष्मण-परशुराम संवाद' को अभिनित करने की सब में होड़ मची रहती।

सच है संघ की यह साधना प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से आदर्श समाज निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। इन शिविरों में जीवन बदले जाते हैं। आदर्शों को आदतों में ढाला जाता है जो संस्कार बनते हैं। शिविरों में बिताये गये समय के लिए अगर कहूँ कि मेरे अब तक के जीवन का वह स्वर्णिम समय था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। संघ वंदन की भूमि है। अभिनन्दन की भूमि है जहाँ बसती है-

महक - संस्कारों की
समझ - कर्तव्यों की
परख - धर्म की
परीक्षा - गुणों की
महिमा - इतिहास की

अन्त में बालिका शिविरों के संचालक आदरणीय बाबोसा से कहना चाहती हूँ कि-

जानती थी केवल अपनों को
महत्त्व समाज का बताया आपने
झिझकती थी कुछ कहने में
दबंग होकर बोलना सिखाया आपने
सिमटी थी घर की दहलीज तक
द्वार विस्तार का दिखाया आपने
थे आँखों में केवल सपने
सपनों को हकीकत बनाना बताया आपने

जीवन एक अमूल्य थाती है, वह केवल हँसी-मजाक और उछल-कूद ही नहीं है। जीवन एक गम्भीर उत्तरदायित्व है, जिसे अन्त तक हम टला नहीं सकते। जो जितनी शीघ्रता से इसे स्वीकार करता है वही नीतिज्ञ है। बाहर से भिन्न भले ही दिखाई दे, पर जो भीतर शान्त व गहरी गम्भीरता में रहता है, वही साधक का आदर्श होना चाहिए।

– पू. तनसिंहजी

वर्तमान में क्षत्रिय युवक संघ ही एक मात्र सही रास्ता

– नन्दसिंह बेड़

हमारा जातीय गौरव रक्षित रहे इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम हमारे बालक-बालिकाओं के प्रति विशेष ध्यान देवें। उन्हें क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में भेजें। शिविरों में हमारे जातीय गौरव की बातें सुनकर, शाखाओं में अच्छे संस्कार पैदा कर अपने आचरण को सुन्दर बनावें। जिससे आने वाली पीढ़ियाँ दुर्गादास, राम, कृष्ण जैसे महापुरुष बनने में सक्षम हो सके।

मायड़ एहड़ा पूत जण जेहड़ा दुर्गादास।
मार मंडासो थामयो बिन थम्बे आकाश।।

जैसे दुर्गादास जी वीरता, धीरता, स्वामिभक्ति व ध्येय निष्ठा की मिशाल है वैसे हमारे बच्चे भी बनें।

लेकिन इस आधुनिक मायावी युग में हर व्यक्ति के मन में अक्सर यह प्रश्न उठता है कि आज भी दुर्गादास जैसे पुत्रों की कामना क्यों? दुर्गादास जैसे वीर एवं दुर्गावती जैसी वीरांगनाओं के गुणगान का आज क्या औचित्य है? ऐसे प्रश्न मन में आते ही आत्मा झनझना उठती है तथा मन में विचार आता है, कि पुरखों के गुणगान पर प्रश्न चिन्ह क्यों?

इतिहास का गुणगान हमें प्रेरणा देता है, हमारे में जोश भरता है। नई पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करता है। गर्व से सिर उठाकर चलने की हिम्मत देता है।

सोचता हूँ सब बातें सत्य है परन्तु जिज्ञासा का निराकरण फिर भी नहीं हो पाता है तथा प्रश्न फिर नये रूप में सिर उठाते हैं कि इन सबकी वर्तमान में क्या उपयोगिता है? आज तो न लड़ाई है, न ढाल है, न तलवार, न मुगल है, न अंग्रेज हैं, न रियासते हैं, तो फिर, दुर्गादास जी की क्या आवश्यकता है? रही देशभक्ति और निष्ठा की बात, सो हम तो अर्थ उपार्जन में इतने व्यस्त हैं कि देश सेवा का काम नेताओं पर छोड़ कर निश्चिंत हैं। हमारे समाज की सेवा का जहाँ तक सवाल है तो यह है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता है।

बड़े मंथन तथा उम्र के अनुभव के सहारे से मन कुछ खोज पाया। उत्तर मिला इतिहास ही साक्षी है कि पूर्व काल में जिस राजनैतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ता था वही की वही स्थिति आज है।

तब हमें शत्रुओं से भय था आज भी भयभीत हैं विदेशी संस्कृति एवं साम्यवादी संस्कृति के आक्रमण से, जो धीरे-धीरे पीवणे सर्प की तरह हमारे भीतर समाती जा रही है। हमारे भीतर जन्मे संस्कारों, नैतिक आदर्शों और परोपकारिता को लीलती जा रही है।

विदेशी राजाओं ने हमारे राजाओं की आपसी फूट का लाभ उठाकर हमारी धरती पर आधिपत्य किया, वही फूट अमीरी और गरीबी की शक्ल में आज भी विद्यमान है। बेचारा गरीब अपनी रोटी के जुगाड़ में लगा है लेकिन वैभव सम्पन्न लोग धन के मद से मदान्ध हैं। उन्हें पतन की ओर जाती हमारी जाति एवं संस्कृति नजर नहीं आती। अंग्रेजियत के रंग में रंगी नई पीढ़ी हमारी पुरानी संस्कृति को जड़ता व रूढ़िवादिता का प्रतीक मानकर तथाकथित प्रगति की अंध दौड़ में दौड़ी चली जा रही है। परिणामत: अंजली में ली गई बालू रेत की तरह हमारी संस्कृति चुकती जा रही है।

ऐसी दशा में दुर्गादासों को फिर जन्म लेना होगा जो एक बार फिर अपने शौर्य एवं निष्ठा का प्रदर्शन करें। शौर्य सिर्फ तलवार से शत्रु को मार गिराने तक ही सीमित नहीं है। आज जिस शौर्य की आवश्यकता है, वह है हमारी सड़ी-गली रूढ़ियों को नष्ट कर एक सुन्दर व गौरवपूर्ण संस्कृति को समाज के समक्ष ला खड़ा करना।

हम देख रहे हैं कि आज तक हमारी जाति कई पुरानी रूढ़ियों को अपने कंधों पर ढोये चली जा रही है। अशिक्षा, टीका-प्रथा, दहेज-प्रथा, भयभीत रहना, शराब आदि के झाड़-झंखाड़ों में उलझकर लहुलुहान होती जा रही है।

ऐसे में क्षत्रिय युवक संघ के काम की और ज्यादा महत्ता बढ़ जाती है। हमारे समाज के नवयुवकों को आगे आने की आवश्यकता है। उनका प्रयास इसी दिशा में होना

(शेष पृष्ठ 34 पर)

अपनी बात

एक संन्यासी के पास एक शिष्य गया और कुछ दिन रहने के बाद उसने ध्यान लगाने सम्बन्धी प्रश्न किया। संन्यासी ने उसे एक प्रयोग दिया कि सोचकर लाओ एक हाथ की ताली कैसे बजती है? अब एक हाथ की ताली भी कहीं बजती है? उस व्यक्ति ने बहुत सोचा, खूब खोजा उसने। वह व्यक्ति बड़ा विचारशील था। अनेक विचार आए। एक हाथ से ताली ऐसे बजती है जैसे आकाश में मेघों का गर्जन। आकर गुरु को उसने बताया तो गुरु ने उसको एक डंडा मारा कि मूर्ख, यह एक हाथ की ताली है! कहाँ है इसमें एक हाथ? आकाश में गर्जन होता है तब तो आकाश में बादल टकराते हैं, ये तो दो हाथ हो गये। जहाँ टकराहट है, वहाँ दो। तू ऐसी खबर ला जहाँ टकराहट न हो और ध्वनि उत्पन्न हो। बहुत प्रकार से उसने सोचा। कई तरकीबें निकाली पर सब में हारता गया। महीने बीतने लगे, उदास होने लगा। दिन भर खोज करता रहे पर फिर बात वहीं की वहीं। फिर संन्यासी उसे भगा दे। हार कर उसने वहाँ साधनारत पुराने शिष्यों से पूछा कि भाई, तुम लोगों ने यह प्रश्न कैसे हल किया?

एक शिष्य ने बताया कि मुझे भी इस प्रश्न ने बहुत सताया। तुम तो तीन महीने की बात कर रहे हो मैंने तो तीन साल तक धक्के खाए हैं। फिर एक दिन बिल्कुल थका मांदा हो गया, ऊब चुका था, एक हाथ की ताली, यह भी कहीं बजी है? यह संन्यासी पागल है और हम भी पागल हैं जो इसकी बात मानकर बैठे हैं और एक हाथ की ताली के बजने पर विचार कर रहे हैं। पक्का पता है कि यह हो नहीं सकता। हमको भी पता है, इसको भी पता है, सबको पता है। मगर लग गया मोह इस आदमी से। इसके प्रेम में पड़ गए तो चलो यही करते हैं कि कभी न कभी तो बजेगी या कुछ होगा। तीन साल में जब बिल्कुल थक गया तो मैं पहुँचा इसके पास। इसने फिर पूछा कि एक हाथ की ताली, कि मैं गिर पड़ा। मैं बिल्कुल निराश ही हो गया था, तो मैं गिर पड़ा। उस दिन गुरु प्रसन्न हो गए और उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा, डंडा नहीं मारा उस दिन और कहा-बेटा, उठो, बज गई एक हाथ की ताली।

यह जो गिरना था इसमें अहंकार गिर गया। इस गिरने में सार चित्त गिर गया। उदास-उदास-हार-हार-हार, आखिर एक सीमा होती है। हार उस जगह पहुँच गई कि हार अन्तिम आ गई। पराजय पूरी हो गयी। अब यह पक्का हो गया कि मुझसे कुछ होने वाला नहीं है। न यह एक हाथ की ताली बजनी है, न मुझे सफलता मिलनी है न मेरा ध्यान एकाग्र होना है। यह हताशा उस जगह पहुँच गई जहाँ मृत्यु घट जाती है अहंकार की। विजय मिलती रहे थोड़ी-थोड़ी सफलता मिलती रहे तो अहंकार को पोषण मिलता रहता है। इसीलिए तो एक हाथ की ताली ताकि अहंकार को पोषण न मिल सके। यह प्रक्रिया है अपने अहंकार को तोड़ने की।

संघ की साधना में इसी अहंकार को तोड़ने के लिए चोट पर चोट लगाई जाती है। जो चोट खाकर समझते जाते हैं, उनका अहंकार धीरे-धीरे तिरोहित होता रहता है और पनपती है अकिंचनता। मैं अकिंचन हूँ, अर्थात् किंचन मात्र भी नहीं। यह अकिंचनता ही द्वार खोलती है प्रभु के प्रसाद का। खाली पात्र में ही कुछ भरा जा सकता है। अहंकार से हमारा पात्र अब खाली हो चुका है, इसलिए अब इसमें सद्संस्कार की संपत्ति भरी जा सकती है। खाली पात्र में अवांछित सामग्री नहीं भरनी है। अन्यथा वैसी सामग्री हमारी अकिंचनता को धूमिल कर सकती है। संघ साधना में तल्लीनता से निरन्तरता बनाए रखें कर्मठता, तो अहंकार गिर जाएगा। अहंकार गिराना क्यों जरूरी है, क्योंकि इस अहंकार के कारण ही हमारे समाज में अनेक हार हुई हैं और आज भी यह अहंकार समाज में सर्वत्र व्याप्त है। इसकी उपस्थिति में न तो व्यष्टि में आत्मिक सुन्दरता आती, न समष्टि विकसित होती और परमेष्टि से दूर ही बने रहते हैं।

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं –

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान, मार्ग आदि	
01	उ.प्रा.शि.	19.5.2022 से 29.5.2022	आलोक आश्रम (बाड़मेर)	बाड़मेर से गेहूं रोड़ पर स्थित। – कम से कम 10वीं कक्षा की परीक्षा दे चुके हों। – दो प्राथमिक तथा एक माध्यमिक शिविर कर चुके हों, वे ही आ सकते हैं। – 60 वर्ष से ऊपर की आयु वाले या तो आमंत्रित हों, या पूर्व स्वीकृति ले ली हो, वे ही आ सकेंगे। – 18 मई की शाम तक पहुँचना है। गणवेश लेकर आएँ। – खाने के बर्तन तथा ओढ़ने-बिछाने के कपड़े साथ लाएँ।
02	उ.प्र.शि. (बालिका)	19.5.2022 से 29.5.2022	विरात्रा (बाड़मेर)	बाड़मेर से बसें उपलब्ध हैं। – 9वीं कक्षा उत्तीर्ण तथा कम से कम दो शिविर कर चुकी हों; वे ही आ सकेंगी। – केशरिया गणवेश आवश्यक। – खाने के बर्तन व ओढ़ने-बिछाने के कपड़े साथ लाएँ।
3.	प्रा.प्र.शि. (बुजुर्ग)	29.5.2022 से 31.5.2022	आलोक आश्रम (बाड़मेर)	– बुजुर्ग स्वयंसेवक स्वीकृति लेकर आ सकते हैं। – शिविर फीस खर्चे के साथ देय।

गजेन्द्रसिंह आऊ
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

पृष्ठ 32 का शेष

वर्तमान में क्ष.यु. संघ ही एक मात्र सही रास्ता

चाहिए। आज के ये दुर्गादास अपने निजी सुख, भौतिक सुख-साधनों एवं रूढ़िवादी विचारधारा का त्याग कर यदि नव चेतना की जोत जला सकें तो हमारे पूर्वजों का स्मरण उनका गुणगान सार्थक हो सकेगा।

पुरखों द्वारा रक्त से सींचकर श्रेष्ठता के सर्वोच्च शिखर पर आसीन किये गये इन आदर्शों के प्रति हमारा दायित्व ज्यादा बनता है। आज हमारे समाज में फिर दुर्गादास जी जन्में ऐसे संस्कारों का निर्माण विशेष कर स्त्रियों में भी किये जाने की आवश्यकता को पहचान कर बालिका शिविर भी चालू कर दिये गए हैं। आज नारियाँ ऐसे पुत्रों को जन्म देवें यही आह्वान हमारा समाज एवं संघ करता है। संस्कारवान बालक माँ की अमूल्य निधि तो है ही साथ ही, समाज की अनुपम थाती होते हैं। हमारे बालक भी दुर्गादास बनें इसके लिए आवश्यकता है बालक, बालिकाओं को क्षत्रिय युवक संघ के प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं विशेष प्रशिक्षण शिविरों में माता-पिता भेजें। जैसे पढ़ने के लिए बालक-बालिकाओं को प्रारम्भ में दबाव बनाकर या कुछ प्रलोभन देकर माता-पिता भेजते हैं, उसी तरह श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में भी भेजें, यह आवश्यकता है। मेरे तो यही समझ में आया है कि वर्तमान में श्री क्षत्रिय युवक संघ ही एकमात्र रास्ता है जो समाज में दुर्गादास जैसे महापुरुषों का निर्माण कर सके।

सर्वोदय
मेहनत आपकी मार्गदर्शन हमारा...
सर्वोदय
अकादमी
सभी नये बैच प्रारम्भ
सुबह - दोपहर - सायं
नगेन्द्रसिंह भाटी (जोधपुर)
SI कॉनिस्टेबल RAS पटवारी REET L-1 L-2
सदर थाना, डूंगरपुर Call : 8824616606
ब्रांच : हिरणमगरी सेक्टर 04, उदयपुर

Saralify
Learn German for Free
GERMAN A1- C2
Online/Offline Classes
Native German Teachers,
Recorded Lessons,
Job Support in India and Germany.
9173-59-9173
+49 151-6622-3065
gosaralify@gmail.com
C-292, Vaishali Nagar, Behind Post Office, Jaipur
www.saralify.com

श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ
श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ
स्थापना :- २१/०४/१९९०
-: श्री जय अंबे स्वयं सेवक संघ के कार्य :-
+ साइकल स्कीम + 700 सभ्य की बचत स्कीम + व्यसन मुक्ति
+ कुरिवाज का त्याग + अंध श्रद्धा को दूर करना + प्राथमिक कक्षा के बालकों के लिए हर साल फ्री में नोटबुक और जरूरी सामग्री देना
+ इनाम वितरण + दशहरा महोत्सव + महाराणा प्रताप जयंती महोत्सव
+ गांव की प्राथमिक स्कूल में कंप्यूटर लेब निशुल्क बालकों के लिए
देवेंद्रसिंह, घनश्यामसिंह
अध्यक्ष
सिद्धराजसिंह, अनिरुद्धसिंह
उपाध्यक्ष
हशपालसिंह, जयदीपसिंह
उपाध्यक्ष
यशराजसिंह, तजवितसिंह
मंत्री
हिरेन्द्रसिंह जटुभा
संगठन मंत्री
मित्राजसिंह, नवलसिंह
संगठन मंत्री
महावीरसिंह, महेंद्रसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक
भगीरथसिंह, किशोरसिंह
छात्र पुरस्कार वितरण - समन्वयक
रामदेवसिंह नारुभा
महाराणा प्रताप वर्षगांठ - समन्वयक
शक्तिसिंह, राजेन्द्रसिंह
महाराणा प्रताप जयंती - सह संयोजक
सिद्धराजसिंह, जयेंद्र सिंह
दशहरा महोत्सव समन्वयक
युवराजसिंह, महेंद्रसिंह
दशहरा पर्व - सह संयोजक

मई सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 05

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह